डाक पंजीयन क्र. म.प्र. भोपाल/162/2018–20
पोस्टिंग दिनाँक : 15 जून 2020, पृष्ठ सं. 56
प्रकाशन दिनाँक: 15 जून 2020

आर.एन.आई.पं.क्र. MP HIN/2004/12178

ISSN 2319-3107

मूल्य ₹ 25/-

आंचलिक पत्रकार

458

सितंबर, 1981 से प्रकाशित

"All the News That's Fit to Print"

The New York Times

EARLY EDITION

VOL. CLXIX . . . No. 58,703 NEW YORK, SUNDAY, MAY 24, 2020

U.S. DEATHS NEAR 100,000, AN INCALCULABLE LOSS

They Were Not Simply Names on a List. They Were Us.

Continued on Page 17

कोरोना महामारी

'न्यूयार्क टाइम्स' ने २४ मई के अंक में पहले पन्ने पर अमेरिका में कोरोना वायरस से जान गँवाने वालों के नाम प्रकाशित किए हैं। न्यूयार्क टाइम्स ने शीर्षक लगाया है – "अमेरिका में लगभग एक लाख मौतें, ऐसी क्षति जिसकी गिनती नहीं हो सकती।"

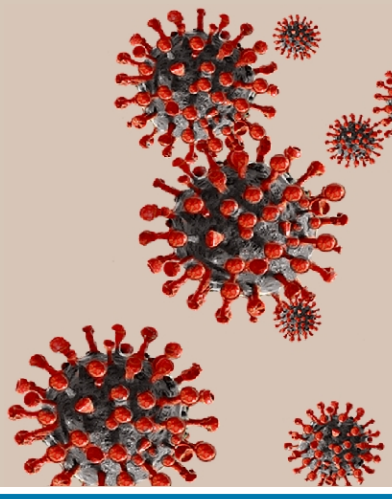

सप्रे संग्रहालय
या विद्या या विमुक्तये

पत्रकारिता, जनसंचार और विज्ञान संचार की शोध पत्रिका

https://www.anchalikpatrakar.com

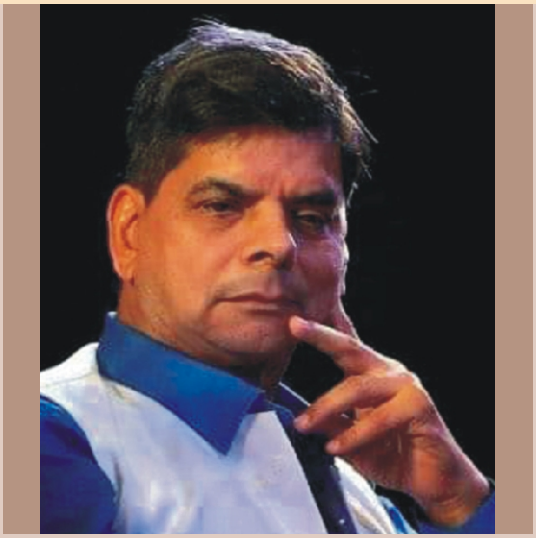

डा. प्रकाश हिन्दुस्तानी को 'माधवराव सप्रे पुरस्कार'

प्रिंट, टेलीविजन और वेब पत्रकारिता में समान रूप से दक्ष हिन्दी के प्रतिष्ठित पत्रकार डा. प्रकाश हिन्दुस्तानी का चयन 'माधवराव सप्रे पुरस्कार' के लिए किया गया है। हिन्दी के पहले पोर्टल वेबदुनियाडाटकाम (webdunia.com) के आप संस्थापक-संपादक हैं। इंटरनेट पर हिन्दी को स्थापित करने वाले शुरुआती पत्रकार हैं। हिन्दी वेब पत्रकारिता पर पहली पीएच.डी. भी आपने की है।

माधवराव सप्रे स्मृति समाचारपत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल के संस्थापक-संयोजक विजयदत्त श्रीधर ने डा. प्रकाश हिन्दुस्तानी को पुरस्कृत करने की घोषणा की है। डा. प्रकाश हिन्दुस्तानी ने श्री राजेन्द्र माथुर और श्री राहुल बारपुते के विद्वत सान्निध्य में पत्रकारिता की शुरुआत की। तदनन्तर धर्मयुग, नवभारत टाइम्स और दैनिक भास्कर में विभिन्न संपादकीय दायित्व का निर्वहन किया। वेबदुनिया का संचालन करने के बाद लगभग एक दशक तक टेलीविजन चैनल में कार्यरत रहे। डा. प्रकाश हिन्दुस्तानी सम्प्रति दैनिक 'प्रजातंत्र' में संपादकीय लेखन और सलाहकार की भूमिका निभा रहे हैं।

डा. प्रकाश हिन्दुस्तानी जाने माने ब्लागर भी हैं। वे हिन्दी में सोशल मीडिया के पहले विश्लेषक हैं। निजी वेबसाइट शुरू करने वाले भी वे पहले पत्रकार हैं। इसकी शुरुआत वर्ष 1999 में हुई - prakashhindustani.com।

उल्लेखनीय है कि डा. प्रकाश हिन्दुस्तानी के कृतित्व को अनेक संस्थाओं ने पुरस्कृत किया है। हाल ही में विश्व संवाद केन्द्र ने आपको 'नारद सम्मान' से सम्मानित किया है।

ISSN 2319–3107

सितंबर, 1981 से प्रकाशित

जून – 2020

वर्ष–39, अंक–10, पूर्णांक–458

एक प्रति ₹ 25/– वार्षिक ₹ 250/–

आंचलिक पत्रकार

पत्रकारिता, जनसंचार और विज्ञान संचार की शोध पत्रिका

अनुक्रम

1.	सप्रे संग्रहालय में नवाचार	विजयदत्त श्रीधर	4
2.	हमारे विश्वविद्यालय : जरूरी सवाल		10
3.	गाँव की ओर लौटती सभ्यता	अरुण कुमार त्रिपाठी	15
4.	कोरोना काल : क्या हो गया और क्या होगा	राजेन्द्र हरदेनिया	20
5.	लाकडाउन : कुछ यक्ष प्रश्न	कृष्ण गोपाल व्यास	27
6.	प्रकृति का शुक्ल पक्ष और मनुष्य का कृष्ण पक्ष	डा. ऋतु पाण्डेय शर्मा	31
7.	कोरोना काल और प्रिंट मीडिया की सामाजिक जिम्मेदारी	डा. सोनाली नरगुन्दे, डा. मनीष काले	33
8.	कोरोना काल में इलेक्ट्रानिक मीडिया बिजनेस माडल में दबी सामाजिक जिम्मेदारी	'' ---- ''	40
9.	कोरोना काल और उसके बाद का मीडिया	जयराम शुक्ल	46
10.	खबर खबरवालों की	संजय द्विवेदी	51

E-mail
sapresangrahalaya@yahoo.com
editor.anchalikpatrakar@gmail.com
(0755) 2763406, मोबा. 9425011467
7999460151 https://www.facebook.com/vijaydutt.shridhar.9

संपादकीय पत्र व्यवहार
संपादक, 'आंचलिक पत्रकार'
माधवराव सप्रे स्मृति समाचारपत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान
मेन रोड नं. 3, भोपाल (म.प्र.) 462003

सम्पादकीय

सप्रे संग्रहालय में नवाचार

सप्रे संग्रहालय की दुर्लभ ज्ञान-संपदा का डिजिटलीकरण, आनलाइन होगी

■ **विजयदत्त श्रीधर**

कोई प्रचलित मान्यता किंवदंती है अथवा प्रामाणिक तथ्य, यह पड़ताल जरूरी हो जाती है। मसलन, क्या ऐसा हुआ होगा कि किसी भारतीय ने 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कोई ऐसी मशीनरी बना ली हो जो आधुनिक जीप-कार की तरह सड़क पर दौड़ती हो और इस ईजाद की एवज में ब्रिटिश साम्राज्य की महारानी ने उसे पुरस्कृत किया हो और हाकिमों को उसे इज्जत देने का हुक्म सुनाया हो।

..... क्या ऐसा हो सकता है कि एक अखबार मुगल सल्तनत के आखिरी बादशाह बहादुर शाह जफर का वह फरमान छाप दे जिसमें बादशाह ने अँगरेजों को भारत से निकाल बाहर करने का आह्वान किया था। सम्पादक-प्रकाशक पर मुकदमा चलाया जाए और सम्पादक फिरंगी हुकूमत के हाईकोर्ट में यह दलील साबित कर दे कि जिस बादशाह के फरमान से ईस्ट इंडिया कंपनी लगान वसूल कर रही है, उसी बादशाह का फरमान छापना गैर कानूनी नहीं है।

..... क्या यह संभव है कि कोई अखबार फिरंगी हुकूमत की मुखालफत के उद्देश्य के साथ निकला हो, जिसके संपादक के लिए दो सूखी रोटी और एक प्याला पानी वेतन नियत हो, साथ में हर समय जेल जाने की तैयारी योग्यता विज्ञापित हो और उस अखबार को ढाई साल के अरसे में एक के बाद एक आठ संपादक मिलें और जिनको कुल मिलाकर 94 साल चार माह की सजा हो जाए।

..... यह वाकया तो आजादी के 25 बरस बाद का है कि एक ऐसे तपोनिष्ठ नेता जिनके पास तब न कोई पद है और न कोई प्रभुता, उनके वचन पर चम्बल घाटी के 270 बागी सत्य और अहिंसा के पुजारी महात्मा गांधी के चित्र के सम्मुख हथियार डाल दें। जबकि बागियों से यह कहा गया था कि तुम्हें अपने द्वारा किए गए अपराध कुबूल करने होंगे और उनके लिए अदालत द्वारा दी जाने वाली सजा भुगतनी होगी, केवल यह वादा कि किसी को प्राणदण्ड नहीं दिया जाएगा।

जब इस तरह की बातें कही-सुनी जाती हैं तब उनके प्रामाणीकरण के लिए संदर्भ-स्रोतों की आवश्यकता होती है। यही संदर्भ-स्रोत हैं जो किंवदंती और तथ्य के बीच का अंतर स्पष्ट कर पाते हैं। प्रामाणिक लेखन के लिए अनिवार्य होता है कि ऐसे स्रोत और संदर्भ सुलभ रहें।

व्यवहार में पुस्तकालय इस आवश्यकता की पूर्ति करते हैं। परंतु ऐसे विशिष्ट संदर्भ ग्रन्थालय और शोध संस्थान महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं जो प्रामाणिक संदर्भों की उपलब्धता के लिए जाने जाते हैं। डिजिटल युग ने एक नया रास्ता भी खोला है। इसे ई-लाइब्रेरी कहा जाता है। यूँ तो इंटरनेट पर बेशुमार पाठ सामग्री भरी पड़ी है परंतु सबकी सब प्रामाणिक नहीं मानी जा सकती। भारतीय संदर्भ में विचार करें तो शोध के स्रोत भिन्न आयामों में भी मिलते हैं। मनीषियों की अलभ्य ज्ञान-संपदा हस्तलिखित

पाण्डुलिपियों के रूप में यत्र-तत्र विद्यमान है। ढाई शताब्दियों तक पुराने ऐसे प्रकाशन भी दुर्लभ संदर्भ-संपदा माने जाते हैं जिनमें समकालीन परिघटनाओं, उनके निहितार्थों और फलितार्थों के द्रष्टान्त दर्ज हैं। भारत के नवजागरण आंदोलन और स्वतंत्रता संग्राम के सिलसिले में भारतीय भाषाओं के अनेक पत्र-पत्रिकाएँ इसी श्रेणी में आते हैं। युग निर्माता साहित्य सर्जकों के मौलिक ग्रन्थ भी इसी कोटि में आते हैं।

ज्ञान-तीर्थ माधवराव सप्रे स्मृति समाचारपत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल में लगभग पाँच करोड़ पृष्ठों की विविध विषयों की पाठ सामग्री मौजूद है। इसका एक आयाम हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ हैं। दूसरा आयाम साहित्यकारों, सम्पादकों, अन्य मनीषियों के दस हजार से ज्यादा पत्रों का संकलन हैं। तीसरा आयाम 26 हजार से अधिक शीर्षक समाचार पत्र-पत्रिकाओं की फाइलें हैं। चौथा आयाम हिन्दी, अँगरेजी, उर्दू, मराठी, गुजराती, संस्कृत आदि भाषाओं की विविध विषयों की 1 लाख 66 हजार पुस्तकें हैं। इनके अलावा विषयवार 4600 संदर्भ फाइलें हैं। इस विपुल संदर्भ सामग्री में से एक बड़ा हिस्सा ऐसा है जो पुराने जर्जर पन्नों के कारण बार-बार हाथों से नहीं गुजरने दिया जा सकता। ऐसी स्थिति में अनुसंधित्सुओं, रचनाकारों और पत्रकारों के ज्ञान-लाभ के लिए संदर्भों की सुलभ उपलब्धता भी अपेक्षित है। इस दृष्टि से सप्रे संग्रहालय ने संदर्भ सामग्री के डिजिटलीकरण की परियोजना आरंभ की है। पहले चरण में सबसे महत्वपूर्ण दस लाख पृष्ठों का डिजिटलीकरण किया जा रहा है। इनमें से दो लाख दो हजार पृष्ठ सामग्री का डिजिटलीकरण पूरा भी हो गया है। कोरोना संकट के कारण इस कार्य में व्यवधान आया है। स्थिति सामान्य होने के बाद पुन: कार्य आरंभ होगा। पहले चरण का काम पूरा होते ही यह संदर्भ-सामग्री आनलाइन उपलब्ध करा दी जाएगी।

हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के मूर्धन्य साहित्यकारों और संपादकों का साहित्य और पत्रकारिता के साथ-साथ समाज सुधार, आधुनिक शिक्षा, स्वदेशी और स्वावलंबन के क्षेत्र में भी असाधारण अवदान है। इतिहास, राजनीति शास्त्र, नृतृत्व शास्त्र, पुरातत्व और पुरालेख, संस्कृति और कला, अर्थशास्त्र और वाणिज्य, विज्ञान इत्यादि मनुष्य जीवन के विविध आयामों पर असाधारण सृजन भारतीय ज्ञान कोश को समृद्ध करता है। इनमें से बहुत कुछ प्रकाशित और प्रचलित है तो बहुत कुछ अप्राप्य और दुर्लभ भी है। इस युग निर्माता रचनाकर्म को भावी पीढ़ियों के लिए संरक्षित और सुलभ कराने का दायित्व सप्रे संग्रहालय यथासंभव निभा रहा है।

हिन्दी को नयी चाल में ढालने वाले भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की दो दर्जन से ज्यादा किताबें और काव्य सुधा

निधि, हरिश्चन्द्र मैगजीन, हरिश्चन्द्रिका, बालाबोधिनी जैसी पत्रिकाएँ; राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द की हिन्दी व्याकरण, बालकृष्ण भट्ट का हिन्दी प्रदीप और निबंध, माधवराव सप्रे का छत्तीसगढ़ मित्र और हिन्दी केसरी पत्र तथा दासबोध और गीता रहस्य जैसे अनुवाद और निबंध संग्रह, आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की सरस्वती पत्रिका और अभिनन्दन ग्रन्थ, बनारसीदास चतुर्वेदी का विशाल भारत और मधुकर पत्र तथा पुस्तकें, रामरख सहगल का चाँद, श्यामसुंदर दास के ग्रन्थ और नागरी प्रचारिणी पत्रिका, माखनलाल चतुर्वेदी की प्रभा और कर्मवीर, गणेश शंकर विद्यार्थी का प्रताप और पुस्तकें, महात्मा गांधी के गुजराती हिन्द स्वराज की हस्तलिखित प्रति तथा नवजीवन, यंग इंडिया तथा हरिजन पत्र, गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर की गीतांजलि की हस्तलिखित प्रति, जयशंकर प्रसाद की कामायनी की हस्तलिखित प्रति, प्रेमचन्द का हंस और जागरण, लाल बलदेव सिंह का भारत भ्राता, रायबहादुर हीरालाल के प्रामाणिक शोध ग्रन्थ और गजेटियर, कामताप्रसाद गुरु का व्याकरण, चन्दबरदायी का पृथ्वीराज रासो, देवकीनन्दन खत्री की चन्द्रकान्ता, तपस्वी सुंदरलाल का जब्तशुदा इतिहास ग्रन्थ 'भारत में अँगरेजी राज', जलियाँवाला बाग नरसंहार पर पण्डित मोतीलाल नेहरू कमेटी की जाँच रिपोर्ट आदि डिजिटाइज करा लिए गए हैं।

हिन्दी के सबसे पुराने जीवित पत्रों में से एक 'जयाजी प्रताप' जिसकी प्रकाशन यात्रा 11 जनवरी 1905 को ग्वालियर से आरंभ हुई थी, 26 जनवरी 1950 को जिसने 'मध्यभारत संदेश' नाम धारण किया और जो नवंबर 1956 में 'मध्यप्रदेश संदेश' हो गया। उसके 1905 से 2019 तक के सभी अंकों का डिजिटलीकरण जनसंपर्क मध्यप्रदेश के सौजन्य से हो गया है।

युग प्रवर्तक मराठी दैनिक संदेश और मराठी की अन्य प्रमुख पत्र-पत्रिकाएँ, इलस्ट्रेटेड वीकली आफ इंडिया, धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, दिनमान, कल्पना, रविवार, सुधा, माधुरी, श्रीशारदा, विज्ञान, भूगोल, विद्यार्थी, मर्यादा, महारथी, वाणी, हिन्दू पंच आदि शोध संदर्भ के लिए महत्वपूर्ण पत्रिकाओं के पाँच लाख से अधिक पृष्ठों का डिजिटलीकरण कोरोना संकट की समाप्ति के उपरान्त कराया जाना है।

डिजिटलीकरण की इस प्रक्रिया का अद्‌भुत फलितार्थ इतिहास के रू-ब-रू होने का रोमांच अनुभव कराएगा। मसलन, जब 15 अगस्त 1947 के अखबार के पहले पन्ने की इबारत पर नजर डालेंगे तब 'इंडिया इज फ्री टुडे' पढ़ते ही पाठकों को अद्‌भुत रोमांच महसूस होगा। जब 2 फरवरी 1948 के अखबार सामने आएँगे तब वे 'माँ की छाती पर घोर वज्राघात' की पीड़ा ही नहीं देंगे, मर्मांतक संताप का अनुभव भी कराएँगे। 21 जुलाई 1969 के अखबार का शीर्षक 'मैन लैंड्स आन मून' ऐसी प्रतीति कराएगा मानो आपके कदम भी चन्द्रमा की ओर चल पड़े हैं। 18 दिसंबर 1971 के अखबारों का मुख्य शीर्षक मुनादी करेगा - महान बांग्ला विजय और स्वतंत्र बांग्लादेश के जन्म की।

सप्रे संग्रहालय के खजाने में पहले और दूसरे विश्वयुद्ध के सचित्र और प्रामाणिक विवरण, विम्बलडन की शुरुआत, विज्ञान और प्रौद्योगिकी की महान परिघटनाएँ, भोपाल गैस त्रासदी और अब के कोरोना संकट आदि से संबंधित सैकड़ों संदर्भ फाइलें भी डिजिटल स्वरूप में आ जाएँगी।

माधवराव सप्रे स्मृति समाचारपत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान पिछले कई बरस से प्रयासरत था कि डिजिटल स्वरूप में ज्ञान-संपदा जिज्ञासुओं और शोधकर्ताओं के लिए आनलाइन उपलब्ध करायी जाए। इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र ने इस योजना के महत्व को समझा और संबल प्रदान किया। इसके लिए इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र के अध्यक्ष सुधी संपादक श्री रामबहादुर राय और सदस्य सचिव डा. सच्चिदानंद जोशी साधुवाद के अधिकारी हैं। हिन्दी भवन भोपाल ने भी सहयोग का हाथ बढ़ाया है जिसके लिए मंत्री-संचालक श्री कैलाशचन्द्र पन्त भी धन्यवाद के अधिकारी हैं। ❑❑

सम्मति

भाई साहब सादर प्रणाम। आपका यह काम अतीत को भविष्य से जोड़ने वाला है। वर्तमान तो आप सँवार ही रहे हैं। इस अतुलनीय काम के लिए आप सदा याद किए जाते रहेंगे।

● **गौरव अवस्थी**

भाईसाहब अति उत्तम श्रम! दुर्लभ दस्तावेज और अधिक सुलभ होंगे।

● **कैलाश नारायण शर्मा**

वाह! भाई साहब बधाई हो इस महान कार्य के लिए।

● **अरुण त्रिपाठी**

समय की धारा के अनुरूप एक सार्थक पहल।

● **राजेन्द्र बज**

शुभ समाचार है। नेट पर इसकी प्राप्ति कैसे और कब से संभव होगी, यह भी बताएँ।

● **बलराम अग्रवाल**

बहुत बड़ी उपलब्धि है। आपके श्रम और दूरदर्शिता अनुकरणीय है। आप हमारे आदर्श हैं। यह सामग्री निश्चित ही शोधार्थियों का काम आसान करेगी और उन्हें नये फलक प्रदान करेगी। आप सभी को बधाई।

● **अल्पना त्रिवेदी**

शुभकामनाएँ। बहुत ही स्तुत्य कार्य किया है। आपके संकल्प को नमन।

● **रमेश शर्मा**

इससे और ज्ञान का प्रसार हो सकेगा। जो समय की कमी के कारण संग्रहालय नहीं पहुँच पाते उनके लिए बहुत ही अच्छा होगा। आपको साधुवाद।

● **दिनेश शुक्ल**

Superb initiative!! Congratulations... Looking forward to it!!

● **प्रियंका विसारिया नायक**

आपके नेतृत्व में सप्रे संग्रहालय ऐतिहासिक धरोहरों को सँजोने का ऐतिहासिक काम कर रहा है। बहुत-बहुत बधाई और शुभकामनाएँ।

● **देवप्रिय अवस्थी**

सचमुच यह अनमोल संपदा है और आपके नेतृत्व में यह महान कार्य हो रहा है। शुभकामनाएँ।

● **श्रीवत्स दिवाकर**

एक मिशन को लेकर सप्रे संग्रहालय काम कर रहा है। इस संस्था के प्रति हम कृतज्ञ हैं... हम धन्य हैं।

● **कमलेश मिश्र**

बप्प रे बप्पा, एक जान और इतना ज्ञान। हम ननिहाली तो धन्य हो गए। कोई भी पर्यटक आए तो उसे सप्रे संग्रहालय लाकर धन्य किया जाए।

● **प्रवीण चौधरी**

इस आद्यंत सफलता के लिए अनेक बधाई और शुभकामनाएँ।

● **डा. रत्नेश**

पिछले दिनों पी. साईनाथ के एक इंटरव्यू में मीडिया पर बोलते हुए उन्होंने राजा राममोहन राय के 'मिलात उल अखबार' की चर्चा की थी। और मैं जब राजा राममोहन राय पर पढ़ने के लिए कुछ और सामग्री खोजने लगी तो पता चला कि उन्होंने रूढ़ियों के खिलाफ अपनी पहली पुस्तक फारसी में लिखी थी- - 'तुहफत अल-मुवाहिदीन'।

● **दविन्दर कौर उप्पल**

सराहनीय पहल डिजिटल संदर्भ सामग्री उपलब्ध कराने की दिशा में। अनेकानेक साधुवाद और बधाई आपको इस उपलब्धि पर।

● **आलोक अवस्थी**

अद्‌भुत लेख। पुरानी यादें ताजा हो गईं। आपको पहली बार मार्च 1989 में सुना था। तब पत्रकारिता के विद्यार्थी के रूप डा. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर से प्रोफेसर प्रदीप कृष्णात्रे सर के साथ आपसे मुलाकात की थी।

● **डा. कृष्ण राव**

आप जैसे लोग ही यह महान कार्य कर सकते हैं। इतनी संख्या में समाचारपत्रों, पुस्तकों, पाण्डुलिपियों आदि का संग्रह करना मामूली काम नहीं। अब आपने इस संग्रहालय के आधुनिकता की ओर कदम बढ़ाया है। इससे पूरे विश्व के लोग लाभान्वित होंगे। मेरी भी इच्छा रही कि आपके संग्रहालय को देखूँ और कुछ ज्ञान अर्जित करूँ। यह काम कब पूरा होता है। ईश्वर की मर्जी पर निर्भर करता है। काशी के पुस्तकालय खत्म होते जा रहे हैं। यहाँ अब पढ़ने-पढ़ाने का माहौल नहीं। ऐसे में आपका संग्रहालय मेरे जैसे तुच्छ व्यक्ति के लिए संजीवनी का काम करेगा। आपको इस संग्रहालय की स्थापना के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद।

● **वशिष्ठ नारायण सिंह**

भारत की विरासत को सदियों तक, सुरक्षित रखने, नई पीढ़ियों को हमारे पुराने इतिहास से परिचित कराने का स्थायी साधन का संरक्षण।

● **गोविंद देवलिया**

आपने शुरुआत में ही जो अनजान वाकयात लिखे हैं उसी से ही अंदाज हो जाता है की कितना रुचिकर होगा। अगर इसे काल के अनुसार श्रेणीबद्ध किया जाए तो सभी के लिए और सुविधाजनक हो जाएगा।

● **अनूप श्रीवास्तव**

बहुत बड़ा काम, अच्छी सोच, लगन और कड़ी मेहनत का यह फल है।

● **प्राण चड्ढा**

बड़े कद की खबर है यह। बहुत महत्वपूर्ण कार्य है।

● **इला कुमार**

सचमुच बहुत महत्वपूर्ण कार्य है। इस जिम्मेदारी की जितनी प्रशंसा की जाए कम है।

● **सेवा राम त्रिपाठी**

अति सुंदर। आपका कालजयी श्रम सार्थक हुआ। बधाई।

● **गिरीश पंकज**

ज्ञान तीर्थ सप्रे संग्रहालय नि:सन्देह भारत में एकमात्र अद्वितीय केंद्र है। साधुवाद।

● **संजीव आचार्य**

गर्व है इस महान उपक्रम से सीधे जुड़े होने का।

● **राकेश दीक्षित**

बहुत बढ़िया, दूर दराज के लोगों को लाभ मिलेगा।

● **नीलकंठ पारटकर**

सप्रे संग्रहालय को मध्यप्रदेश तथा भारत की टूरिस्ट गाइड में विशेष रूप से शामिल करना चाहिए। यह सभी जिज्ञासु, पढ़े-लिखे लोगों का तीर्थ स्थल है।

● **सुदीप साहू**

आने वाली पीढ़ियों को यह आपका अनुपम उपहार साबित होगा।

● **अनिल यादव**

निश्चित रूप से आने वाली पीढ़ी के लिए यह वरदान होगा... आभार सर।

● **भीम सिंह मीना**

बहुत शुभकामनाएँ। सप्रे संग्रहालय से पहले दिन से ही जुड़ा हूँ आपकी मेहनत की सराहना करता हूँ। एक ऐसा संस्थान आपने मध्यप्रदेश को लिया है इसके लिए आपको बधाई और आभार।

● **विजय दुबे**

A Herculean task, never before in the history of journalism, is almost accomplished under your guidance and leadership. My hearty congratulations, respected Shridharji !

● **डा. श्याम बिल्लोरे**

अद्‌भुत संकल्प का प्रतिफल।

जिस कालखंड में आदरणीय श्रीधर जी ने यह संग्रहालय बनाया, वही कालखंड है, जब विश्व विद्यालयों और महाविद्यालयों के संग्रहालय तथा पुस्तकालय नष्ट हुए। जबकि इसी समय प्राध्यापकों और पुस्तकालय अध्यक्षों के कई गुना वेतन बढ़े। यानी वेतन बढ़ने से यह वर्ग अपने दायित्वों के प्रति घोर लापरवाह होता चला गया।

● **प्रमोद भार्गव**

यह पुस्तकालय एक हेरिटेज है। हर साहित्यिक को कम से कम एक बार इस पुस्तकालय का अनुभव जरूर लेना चाहिए।

● **अभिजीत सिंह**

सराहनीय। दुर्लभ सामग्री दुनिया में कहीं भी देखी जा सकेगी तो अनेकानेक लोग इसका लाभ उठा सकेंगे। बधाई और शुभकामनाएँ। आपने काम शुरू किया है तो बखूबी पूरा होगा।

● **अनिल माथुर**

पत्रकारिता के क्षेत्र में यह एक महान कार्य हुआ है

● **अजय खरे**

आपके इन अभूतपूर्व भागीरथी प्रयासों को आने वाली पीढ़ियाँ सदियों याद रखेंगी। न केवल पत्रकारिता अपितु अन्य अनेक विषयों के शोधार्थियों के लिए संग्रहालय वरदान है। आप और आपकी टीम के अनवरत, अथक प्रयासों को नमन।

● **कमाल खान कमाल**

यह एक अद्वितीय ज्ञान तीर्थ है। अभिनन्दन।

● **शैलेन्द्र कुमार शर्मा**

आपका यह अभियान बहुत ही सराहनीय है और नई पीढ़ी के लिए अमूल्य धरोहर है। मैंने स्वयं भी सप्रे संग्रहालय का अवलोकन किया है और यह मेरे लिए गौरव की बात है। अद्‌भुत, अकल्पनीय संग्रह। बहुत बधाई।

● **सुधीर जैन**

अत्यंत सार्थक पहल.... ढेर सारी शुभकामनाएँ।

● **धनंजय चोपड़ा**

बधाई भाईसाहब। भोपाल में जिसने सप्रे संग्रहालय नहीं देखा, उसने कुछ नहीं देखा।

● **चन्द्रशेखर परसाई**

श्रद्धेय! आपके इस पोस्ट में स्वयं इतिहास उपस्थित हो गया है। मेरा सौभाग्य है कि मैं भी इसे देख सका हूँ!

● **प्रभात ओझा**

अखबार सुरक्षा का यह अभियान सफल हो। आपका आभार, शुभकामनाएँ, बधाई, अभिनंदन।

● **कमलेश कुमार दीवान**

भोज शोध संस्थान धार इस महनीय कार्य, संस्था स्थापना और सभी सहयोगी संस्था महानुभावों का अभिनंदन करता है।

● **दीपेन्द्र शर्मा**

माधवराव सप्रे स्मृति समाचारपत्र संग्रहालय एवं शोध केन्द्र संभवत: अपनी तरह का विश्व का एकमात्र संग्रहालय है। यहाँ मौजूद अत्यंत महत्वपूर्ण सामग्री का डिजिटलीकरण इस ज्ञानकोश को जन-जन तक पहुँचाने का श्लाघनीय उपक्रम है। इस हेतु संग्रहालय से जुड़ा हर व्यक्ति बधाई एवं अभिनन्दन का पात्र है।

● **आर.वी. आचार्य**

दुर्लभ पुस्तकों को बचाने का यही उपाय है। कागज की निश्चित सीमा होती है। इतिहास सुरक्षित होगा तो भविष्य में काम आएगा, यह कार्य अति शीघ्र होना चाहिए।

● **अभय शर्मा**

इसमें कोई संदेह नहीं कि आपने और आपके अवस्थी जी जैसे अधिकारियों ने सप्रे जी के नाम पर स्थापित संग्रहालय को बहुत बड़ी एहमियत प्रदान की है। ऐसा कोई और संस्थान हो मुझे याद नहीं आ रहा है। मैं तहे दिल से आपके प्रयासों की सराहना करता हूँ। सादर, बधाइयाँ ग्रहण करें...।

● **माताचरण मिश्र**

पत्रकारिता का तीर्थ।

● **डा. राकेश पाठक**

देश की युवा पीढ़ी को डिजिटल द्वारा भारतीय इतिहास का ज्ञान कराने के आपके एवं सहयोगियों के भागीरथी प्रयास को कोटि-कोटि बधाई और हार्दिक शुभकामनाएँ और साधुवाद।

● **राजकुमार दुबे**

आज के समय के अनुकूल एक बड़ी और प्रशंसनीय पहल है आदरणीय सर। यह सब आपकी जिजीविषा और इच्छाशक्ति का परिणाम है।

● **सुनील मिश्र**

संग्रह का डिजिटलीकरण अर्थात संग्रह स्वयं पाठक के पास जाएगा। दुर्लभ, रोचक, रुचिकर और इतिहास को समेटते संग्रह का जन-जन तक, विस्तार करने का आपका प्रयास अभिनंदनीय। बधाई और शुभकामनाएँ।

● **देवेन्द्र वर्मा**

ई-लाइब्रेरी की विस्तृत जानकारी मिली। ऐसे संग्रहालय प्रशंसनीय हैं। अनुकरणीय भी।

● **रंजना नायक**

मुझे वह दिन अच्छी तरह याद है जब अरविंद जी के साथ मैं अपनी भोपाल यात्रा के दौरान कुछ समय के लिए आपसे मिला था। उस छोटी मुलाकात में आपने संस्थान की लाइब्रेरी के डिजिटलीकरण के लिए जारी प्रयासों की भी संक्षिप्त चर्चा की थी। आज वह साकार रूप ले चुका है। इसके लिए आपको बधाई एवं दिल से साधुवाद। सादर...।

● **उदय प्रताप सिंह**

अत्यन्त महत्वपूर्ण.... और स्थायी कार्य जो भावी पीढ़ियों को अद्‌भुत उपहार है.... सादर अभिनन्दन।

● **राजीव शर्मा**

यह आपका भागीरथी प्रयास है भैया ... ज्ञान की जो अजस्र धारा सप्रे संग्रहालय के माध्यम से आपने बहायी है उसके डिजिटलाइजेशन हो जाने से यह युगों-युगों तक संरक्षित हो गई। आपके महती कार्य को प्रणाम - आपका अनुज।

● **नृपेन्द्र शर्मा**

आपके भागीरथी प्रयासों से ये संस्थान देश का एकमात्र समाचार पत्र संग्रहालय बन चुका है जहाँ इतनी विविध और दुर्लभ सामग्री उपलब्ध है। डिजिटल संस्करण आम जन को ऑनलाइन उपलब्ध होगा क्या?

● **आशीष देवलिया**

हमारे विश्वविद्यालय : जरूरी सवाल

भारत के विश्वविद्यालय, उनके कुलपति और प्राध्यापकों को लेकर फेसबुक पर संक्षिप्त चर्चा चली। उकसाया डा. उमेश सिंह ने और कुछ मित्रों ने उसे आगे बढ़ाया। हमें लगा इस विषय पर कुछ जरूरी सवाल दर्ज होना चाहिए। आखिर कुलपति और प्राध्यापक समाज के सबसे प्रबुद्ध वर्ग होते हैं और यह धारणा कमजोर जरूर पड़ रही है परंतु उसे बरकरार रहना चाहिए। विश्व-विद्यालयों और भविष्य की पीढ़ियों के भले के लिहाज से कोई परिणाम मूलक बहस चले तो बेहतर होगा।

शुरुआत करते हैं बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के रजत जयंती समारोह में 21 जनवरी 1942 को महात्मा गांधी के भाषण के एक अंश से। ..... ''एक बात और, पश्चिम के हर एक विश्व-विद्यालय की अपनी एक न एक विशेषता होती है। कैम्ब्रिज और आक्सफोर्ड को ही लीजिए। इन विश्वविद्यालयों को इस बात का नाज है कि उनके हर एक विद्यार्थी पर उनकी अपनी विशेषता की छाप इस तरह लगी रहती है कि वे फौरन पहचाने जा सकते हैं। हमारे देश के विश्वविद्यालयों की अपनी ऐसी कोई विशेषता होती ही नहीं। वे तो पश्चिमी विश्वविद्यालयों की एक निस्तेज और निष्प्राण नकल भर हैं। अगर हम उनको पश्चिमी सभ्यता का सिर्फ सोख्ता या स्याही-सोख कहें, तो शायद वाजिब होगा।''

गांधी जी ने जो गंभीर सवाल उस दिन उठाया था भारत के विश्वविद्यालयों के पास आज भी उसका कोई जवाब नहीं है।

दूसरा उदाहरण, आगरा विश्वविद्यालय का एक शोध छात्र वरेण्य सम्पादक पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के पास पहुँचा और उनसे अपने शोध प्रबंध के लिए विषय सुझाने का अनुरोध किया। बनारसीदास जी ने सुझाया कि आचार्य वासुदेव शरण अग्रवाल पर शोध करें। शोध छात्र ने सिनाप्सिस प्रस्तुत कर दी। आर.डी.सी. ने शोध छात्र का प्रस्ताव यह कहते हुए अमान्य कर दिया कि वासुदेव शरण जी का ऐसा काम नहीं है जिस पर शोध हो। निराश विद्यार्थी ने बनारसीदास जी को आर.डी.सी. के निर्णय की जानकारी दी। बनारसीदास जी ने 'अमर उजाला' में आर.डी.सी. के इस मूर्खतापूर्ण निर्णय पर कठोर टिप्पणी लिखी। 'ब्रजभारती' में भी आर.डी.सी. के प्राध्यापकों की अज्ञानता पर टिप्पणी लिखी गई। अंतत: विश्वविद्यालय ने अपनी गलती सुधारी। यहाँ यह सवाल उठता है कि अपने समय के परम विद्वान आचार्य वासुदेव शरण अग्रवाल के कृतित्व को नहीं जानने वाले अथवा नकारने वाले प्राध्यापकों को क्या विश्वविद्यालय में बनाए रखने का कोई औचित्य था ? आखिर अक्षर शत्रुओं का ऐसा जमावड़ा विश्वविद्यालयों के लिए किसी कोरोना वायरस से कम घातक नहीं होता।

रहा सवाल बनारसीदास जी की विद्वत्ता और मान्यता का, सन 1970 में आगरा विश्वविद्यालय ने उन्हें डी.लिट. की मानद उपाधि से सम्मानित किया। बनारसीदास जी की प्रतिक्रिया थी –

''बड़े बड़ों की अकल अब चरन लगी है घास।
फोकट में डी.लिट. भये श्री बनारसीदास।।''

प्रकाण्ड पंडित आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस दोहे के जवाब में दूसरा दोहा लिखा –

''बड़े बड़ों को अकल अब आई अस विश्वास।
डी.लिट. गुरु डी.लिट. भये श्री बनारसीदास।।''

एक प्रसंग इलाहाबाद विश्वविद्यालय में उपस्थित हुआ। डा. रामप्रसाद त्रिपाठी इलाहाबाद

विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के अध्यक्ष थे। वे अपने विषय के अधिकारी विद्वान थे। बाद में सागर विश्वविद्यालय के कुलपति भी रहे। विश्वविद्यालय की एक चयन समिति में वे शामिल थे। एक युवा अभ्यर्थी का साक्षात्कार चल रहा था। उसने कई किताबें लिख डाली थीं। इसका उसे अभिमान भी था। परंतु उसका साक्षात्कार बहुत सामान्य रहा। त्रिपाठी जी ने उसे सलाह दी – ''आपने बहुत लिख लिया, अब थोड़ा पढ़ भी लो।''

मध्यप्रदेश में जब पं. द्वारकाप्रसाद मिश्र मुख्यमंत्री थे तब उन्होंने बहुत आदर और अनुरोधपूर्वक कई विद्वानों को मध्यप्रदेश के विश्वविद्यालयों में आमंत्रित किया। इन नियुक्तियों में और व्यवहार में बहुत गरिमा बरती गई। ऐसे ही एक विद्वान थे डा. बाबूराम सक्सेना। उन्हें रविशंकर विश्वविद्यालय, रायपुर के (उप) कुलपति पद पर प्रतिष्ठित किया गया। कुछ समय बाद मुख्यमंत्री का रायपुर दौरा हुआ। विश्वविद्यालय के एक वरिष्ठ अधिकारी ने कुलपति को सलाह दी कि मुख्यमंत्री की अगवानी के लिए हवाई अड्डा चलना चाहिए। सक्सेना जी ने विनम्रतापूर्वक मना कर दिया, ऐसा करना कुलपति की गरिमा के प्रतिकूल होगा। सलाह देने वाला अधिकारी न केवल विमानतल पहुँचा बल्कि बाद में सर्किट हाउस में भी मुख्यमंत्री से मिला। इस घटना के चश्मदीद गवाह वरिष्ठ पत्रकार रमेश नैयर ने बताया कि अधिकारी ने खुशामद के वशीभूत मुख्यमंत्री को सूचना दी कि उन्होंने तो कुलपति से भी हवाई अड्डा चलने के लिए कहा था लेकिन कुलपति ने पद की गरिमा के विपरीत होने का हवाला देकर मना कर दिया। मुख्यमंत्री पं. द्वारकाप्रसाद मिश्र का उत्तर था – मैं भी कुलपति रहा हूँ और आपके कुलपति ने पद की गरिमा के अनुरूप जो बात कही है वह एकदम सही है।'' क्या अब गरिमा के प्रति सचेत ऐसे कुलपति कहीं हैं? और क्या व्यवहार में ऐसा बड़प्पन दिखाने वाले मुख्यमंत्री अब पाए जाते हैं?

यहाँ यह उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि पं. द्वारकाप्रसाद मिश्र इतिहास के विद्वान, कुशल संपादक और सुधी साहित्यकार थे और आजादी की लड़ाई की आँच में तपकर प्रखर नेता बने थे।

ताजा दौर के विश्वविद्यालयों में गरिमा के हालात क्या हैं? अवधेशप्रताप सिंह विश्व-विद्यालय, रीवा की सच्ची घटना एक द्रष्टांत है। इस विश्वविद्यालय के कुलपति ने किसी गंभीर प्रकरण में कुलसचिव के निलंबन का आदेश जारी कर दिया। कुलसचिव एक ताकतवर नेता का 'खास' था जो तत्कालीन मुख्यमंत्री पर भी भारी पड़ता था। उन्होंने रातों-रात अध्यादेश के जरिये विश्वविद्यालय अधिनियम बदलवा दिया। कुलपति तो राज्यपाल के अधीन ही रहे लेकिन कुलसचिव को उच्च शिक्षा विभाग का अधीनस्थ अधिकारी बना दिया गया। इस 'वारदात' के चश्मदीद गवाह डा. रामाश्रय रत्नेश हैं। परिणाम क्या हुआ? हमारे विश्वविद्यालय अराजकता के अड्डे बन गए हैं।

दुनिया के कई देशों में कोरोना वायरस से उपजी महामारी के उपचार की तलाश में कई

विश्वविद्यालयों में अनुसंधान चल रहे हैं। विश्वविद्यालयों से ऐसे कार्य की अपेक्षा भी की जाती है। आखिरकार वे ज्ञान के बहुआयामी उत्कृष्ट संस्थान माने जाते हैं। क्या भारत के किसी विश्वविद्यालय में ऐसी किसी पहल की कहीं कोई सूचना है ?

एक भविष्यघाती निर्णय विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने कुछ बरस पहले लिया। कुलपतियों की उम्र बढ़ाकर 70 बरस कर दी गई और प्राध्यापकों की 65 वर्ष। अर्थात कुलपति सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों से भी ऊपर पहुँच गए। इन्हें वेतन भी बहुत ऊँचे दिए गए। परंतु यह विचार नहीं किया गया कि विश्वविद्यालयों को वृद्धाश्रम बनाने से युवा प्रतिभाओं के अवसर पर कुठारघात हो गया। इस बिन्दुओं पर भी विचार नहीं किया गया कि विश्वविद्यालयों के अध्यापकों की अध्ययनशीलता और प्रयोगधर्मिता में निरंतर बढ़ोतरी होती रहे। ज्ञान की नयी प्रविधियों और नयी प्रौद्योगिकी का प्रयोग करने में उनकी दक्षता बढ़े। पुस्तकालयों और प्रयोगशालाओं में उनका अधिक समय व्यतीत हो। उनमें संदर्भ ग्रन्थ और शोध पत्रिकाएँ खरीदकर पढ़ने की आदत बने। डी.लिट. और पीएच.डी. के शोध प्रबन्ध ऐसे गुणवत्तापूर्ण हों जिनसे ज्ञान के नये क्षितिज खुलें। विश्वविद्यालयों में पदोन्नति का एकमात्र आधार योग्यता हो। साथ ही यह वर्जना भी जरूरी हो गई है कि प्राध्यापकगण राजनीतिक दलों और नेताओं के भोपू न बने रहें। उनका वास्ता सिर्फ और सिर्फ शिक्षा और शिक्षार्थी से हो।

जाहिर है, विचारणीय बिन्दु कड़वे हो गए हों और उनकी शब्दावली कठोर हो गई हो, परंतु भीषण व्याधि का उपचार भी कड़वा ही होता है। हमारी प्रार्थना है कि देश के सच्चे ज्ञानीजन भारत के विश्वविद्यालयों में ज्ञान की प्रतिष्ठा के लिए सजग, सक्रिय और सचेष्ट हों।

■ **विजयदत्त श्रीधर**

सम्मति

आभार। सरकारों ने , राजनेताओं ने इतना हस्तक्षेप किया कि विश्वविद्यालय राजनीति के, जातिवाद के अड्डे बन गए !

● **राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी**

आभारी हूँ आपने इस विषय को आगे बढ़ाया। किन्तु मैंने उकसाया नहीं, मन की व्यथा को प्रत्यक्ष करने का प्रयास किया। और खुशी है कि इस पीड़ा को आप और डा. रत्नेश जी द्वारा न केवल आगे बढ़ाया गया, बल्कि सत्य प्रमाणों के साथ पुष्ट भी किया। लेकिन दुर्भाग्य देखिए कि हमारी पोस्ट और आपकी टिप्पणी के बीच दो अति महत्वपूर्ण विश्वविद्यालयों में उसी विभाग के पी.एस. को कुलपति नामांकित कर दिया गया। इसे कहते हैं 'नक्कारखाने में तूती'। ये दोनों ऐसे विश्वविद्यालय हैं जहाँ का कुलपति विशिष्टता वाला होता है।

एक में संगीत की तज्ञता तो दूसरे में दर्शन का अध्येता अपेक्षित है। पता नहीं समय में कुलपतियों का चयन क्यों नहीं हो पाता ? यह लड़ाई का विषय नहीं, और न सरकार और किसी व्यक्ति का विरोध है।

यह विश्वविद्यालयों की गुणवत्ता का है। छात्रों और शिक्षकों की कर्मठता तथा विश्वसनीयता का है। इस समय दुष्यंत जी याद आ रहे हैं – ''कौन कहता है आसमां में सुराख नहीं हो सकता। एक पत्थर तो तबियत से उछालो यारों।''

● **उमेश सिंह**

मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ के राजभवन में विभिन्न पदों पर कोई 15 वर्ष तक कार्य के अनुभव से यह कह सकता हूँ कि पहले कुलपति की नियुक्ति का प्रमुख आधार उसकी अकादमिक योग्यता होता था और इस तरह नियुक्त कुलपति अकादमिक लक्ष्यों के प्रति प्रथमत:समर्पित होते थे। पिछले दशकों में कुलपति बनने की सर्व प्रमुख योग्यता राजनीतिक समबद्धता हो गई। राजनीति में नैतिकता का स्थान न्यस्त स्वार्थ ने ले लिया है इसलिए कुलपति के लिए राजनीतिक निर्देशों के आधार पर कार्य करना अनिवार्यता है, अकादमिक या प्रबुद्धता के आधार पर कार्य करना वैकल्पिक है। तो जो होता है, राजनीतिक ही होता है।

● **सुशील त्रिवेदी**

आपने बहुत सटीक लिखा। इस हेतु आप बधाई के पात्र हैं। उमेश जी ने जिस विषय को ईमानदारी से उठाया आपने उसे सोदाहरण पूरे परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है। इस तिकड़मी वर्ग के लोग शिक्षा से लेकर साहित्य तक को अपनी बपौती समझते हैं। वे ही सच्चे साहित्यकार हैं, वे ही सबसे बड़े शिक्षाविद। बाकी की कोई हैसियत नहीं है। इन लोगों ने आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी सहित उन तमाम समर्पित व्यक्तित्वों के अवदान पर पानी फेर दिया जिनका आपने उल्लेख किया है। इनके जैसी अन्य महान विभूतियाँ भी हैं जिनके अवदान की जान बूझकर अनदेखी षड्यंत्रपूर्वक की जाती रही है और यह आज भी जारी है। इस वर्ग के लोगों को प्रदेश और देश की निर्धन जनता से वसूल कर से भारी भरकम वेतन दिया जाता है। तमाम सुविधाएँ दी जाती हैं और अपेक्षा की जाती है कि ये पीढ़ियों के उज्ज्वल भविष्य को गढ़कर देश के उन्नत भविष्य को बनाएँगे। लेकिन आज क्या परिदृश्य हैं हम सब देख ही रहे हैं। आपने प्रासंगिक विषय उठाया है। इस पर सभी को विचार कर इस तंत्र को तोड़ने का प्रयास करना चाहिए।

● नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

निरापेक्ष लेखन है। वह कठोर ही होगा। ऐसी ही अपेक्षा थी।

● लीलाधर मंडलोई

आदरणीय श्रीधरजी, आपने एक जरूरी और ज्वलंत प्रश्न उठाया। कुछ बातें रखना चाहूँगा। विश्वविद्यालय के अकादमिक कॅरियर के लिए खजूर की तरह सीधे बढ़ने की विवशता है। फल भले बहुत दूर लगें। ज्ञान पिपासु लोग अक्सर ऊँचाई के बजाय चारों दिशाओं में स्वेच्छा से फैलते रहते हैं। इसे अब इंटरडिसिप्लिनरी एप्रोच कहने जरूर लगे हैं, लेकिन अकादमिक क्षेत्र में ऐसे ज्ञानियों की मान्यता अब भी नहीं है। रवीन्द्रनाथ टैगोर, आचार्य रामचंद्र शुक्ल जैसे लोग इसी कोटि के हैं। ये लोग स्नातक भी नहीं थे। रामचंद्र गुहा तक को लम्बे समय तक अकादमिक दृष्टि से मान्यता बहुत देर में मिली।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने ठीक सौ साल पहले एक विश्वविद्यालय खोला था। तब भी स्कूल उनकी सर्वोच्च प्राथमिकता में रहा। लम्बे समय तक वहाँ यह नहीं पता चलने दिया गया कि अमुक विद्वान स्कूल में पढ़ाते हैं और अमुक यूनिवर्सिटी में। कैसे-कैसे विद्वान उनके कहने पर शान्ति निकेतन आकर रहे। क्षितिमोहन सेन चम्बा के राजा के सौ रुपये महीने का मंत्री पद छोड़कर उतनी ही तनख्वाह में रवीन्द्रनाथ के साथ काम करने आ गए थे।

अचम्भे की बात यह है कि सर जदुनाथ सरकार जैसे इतिहासवेत्ता रवीन्द्रनाथ के प्रयोग को समझ नहीं पाए थे। रवीन्द्रनाथ ने उन्हें लौटती डाक में लिखा था कि मेरे लिए मस्तिष्क और हृदय का समान महत्व है, जबकि सरकार साहब मस्तिष्क को ही महत्व देते हैं। जो लोग ज्ञान पिपासा के बजाय दूसरे कारणों से विद्यार्थी और अध्यापक के रूप में विश्वविद्यालयों में घुस गए हैं उनसे आदर्श की अपेक्षा कैसे कर सकते हैं? अभिजातवाद, कुलीनवाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद और विचारधारा के आधार पर प्रतिभा का आकलन कर अवसर दिया जाएगा तो और क्या होगा? इंडियन इंस्टीट्यूट आफ एडवांस स्टडीज, शिमला में पिछले पचास साल की फैलोशिप की सूची उठाकर देख ली जाए। मुझे विश्वास है आपके भागीरथी प्रयास से स्थापित माधवराव सप्रे स्मृति समाचारपत्र संग्रहालय में ऐसा नहीं हुआ होगा। ज्ञान के क्षेत्र में जब तक भेदभाव से परे प्रतिभा को, कर्मठता को प्रश्रय नहीं दिया जाएगा, तब तक तो सब दिवा - स्वप्न ही होगा। आपसे बेहतर कौन जानता होगा कि जिन रुद्रदत्त शर्मा के नाम के आगे 'सम्पादकाचार्य' लगता था वे भूख से मर गए।

● जयंत सिंह तोमर

सब कुछ रातों-रात खराब नहीं हुआ बल्कि विश्वविद्यालयों को योजनाबद्ध ढंग से पंगु बनाया गया है। महामारी और विभिन्न समाजिक-आर्थिक कारणों से विश्वविद्यालयों का मौजूदा स्वरूप अबू बने रहना संभव दिखाई नहीं देता। उच्च शिक्षा के लिए एक ऐसी नवीन संरचना खड़ी करनी पड़ेगी जिसमें विशेषज्ञ प्रोफेसर के साथ छात्रों का एक समूह संबद्ध किया जाए। इन इकाइयों को प्रयोगशालाओं और अध्ययन शालाओं से आवश्यकतानुसार जोड़कर अध्ययन शोध और परीक्षा संबंधी सभी अकादमिक कार्य संपन्न हों। इनके शीर्ष पर विश्वविद्यालय का स्वरूप प्रशासनिक और वर्चुअल होना चाहिए। ऐसा करने से अकादमी कार्यों में प्रामाणिकता आएगी और राजनीतिक प्रशासनिक दखलअंदाजी की गुंजाइश कम हो जाएगी।

● अशोक चतुर्वेदी

I agree with your comments. The existing set up has no regards for Vice Chancellor, Principals and Professors. They are being treated as Government servants.

● **एस.के. कुलश्रेष्ठ**

प्राध्यापकों की गरिमा जिस अधोगति को प्राप्त हो गई है उसका जीवंत विवरण देने के लिए साधुवाद। वस्तुतः जैसे-जैसे विद्वत्तजन राजनीति के सामने समर्पण करते गए वैसे-वैसे शिक्षक के सम्मान का भी क्षरण होता गया। फिलहाल बहुतेरे परम सन्तुष्ट हैं कि अध्यापन के नाम पर जो स्वांग रचना पड़ता था उससे भी कोरोना ने लम्बी मुक्ति दिला दी।

● **रमेश नैयर**

ऑक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज की बराबरी हम कब कर पाएँगे या कर भी पाएँगे पता नहीं। उनसे तुलना भी करें तो क्यों। अगर सोचना ही है तो भारत के पुराने गुरुकुलों के बारे में भी सोच सकते हैं जो हमारी सांस्कृतिक परम्परा के अनुकूल हैं।

श्री श्रीधर जी ने विश्वविद्यालयों को लेकर जो प्रश्न उठाए है, स्तुत्य और विचारणीय हैं। सदा से विश्वविद्यालय महान और अधिकारी विद्वानों को, चाहे वे जिस क्षेत्र से हों, मानद उपाधियाँ देते रहे हैं। पंडित बनारसीदास जी अत्यंत विनोदी स्वभाव के थे। टीकमगढ़ में उनके चरणों में बैठने का मुझे पर्याप्त अवसर मिला है। उनकी हरकतों के अनेक किस्से प्रचलित हैं। एक किस्सा -- फिरोजाबाद की नगरपालिका उनके सम्मान में एक सड़क का नामकरण उनके नाम पर करने के लिए अनुमति लेने गई तो उन्होंने नागरिकों से प्रश्न किया -- क्या आप लोग यही चाहते हो कि रोज सुबह से ही उनके नाम पर जूते-चप्पल पड़ते रहें। सब अवाक।

विश्वविद्यालयों के सम्मान में गिरावट -- मैं इलाहाबाद और सागर विश्वविद्यालयों का छात्र रहा हूँ। इलाहाबाद में शिक्षक के और सागर में अशिक्षक वाइस चांसलर की परिपाटी भी देखी है। दोनों प्रकार के लोगों ने विश्वविद्यालयों को अद्‌भुत तरीके से चलाया। वाइस चांसलर फिर उप कुलपति और अब कुलपति तक की यात्रा तो वृद्धि की ओर बढ़ी किन्तु इनके मानकीकरण में निरन्तर गिरावट ही दिख रही है। क्यों ? अनेक कारण हैं। विस्तार में यहाँ जाना संभव नहीं। कुलपति अकादमिक हेड होता है। विश्वविद्यालय में शिक्षण, शोध की स्तरीय व्यवस्था हो यह उसका दायित्व है। किंतु उसे तो मजबूरी में वित्त और प्रॉक्टर बनना पड़ रहा है। सरकार से अनुदान प्राप्त करने के लिए मंत्रालय की सीढ़ियाँ चढ़कर बाबू की कुर्सी के सामने खड़ा होना पड़ रहा है। स्ववित्तीय योजना के पाठ्यक्रम भी शासन की अनुमति के बिना नहीं चला सकता। स्वायत्तता को घुन लग गया। विद्यार्थियों के अनुशासन के लिए वह ही जिम्मेवार। बाकी अधिकारियों को साँप सूँघ गया। राज्यपाल कुलपति का चयन करते हैं, निकालना भी उन्हें ही चाहिए किन्तु सरकारें उनके पद का उपयोग कर धारा 52 के अंतर्गत सरकार के मनोनुकूल काम न करने के कारण निकाल देती हैं।

शोध -- पहले आर.डी.सी. यह देखती थी कि पीएच.डी. का विषय कितना समाजोपयोगी है और उस पर अन्य किसी विश्वविद्यालय में शोध नहीं हो रहा। शोध छात्र यह प्रमाणपत्र देता था कि यह सर्वथा नवीन है। मौखिक परीक्षा के समय कुलपति भी उपस्थित रहना चाहिए। दुर्भाग्य कि इसी समय वह विद्यार्थियों अथवा कर्मचारियों की हड़ताल से जूझ रहा होता है। इस माहौल में योग्य व्यक्ति या तो स्वयं अलग हो गए या अलग रखा गया। अतएव पसंदीदा कुलपति अपने अभिभावकों के प्रति कृतज्ञ हो गए। मान-मर्यादा का प्रश्न ही कहाँ। अब तो शोध ऐसे विषयों पर सम्भव है कि भोपाल स्टेशन के पुल से सुबह से शाम तक कितने लोग आए गए। ज्ञान की पिपासा नहीं अब डिग्री की आशा बढ़ गई है। इसलिए शिक्षक भी पढ़ने-पढ़ाने, प्रयोगशालाओं तथा शोध से विरक्त हो गया है। लोगों के द्वारा पोषित होने के कारण कुलपतियों का इन पर नियंत्रण नहीं रहा। वैसे कुलपति के पास इन्हें शिक्षण के लिए प्रेरित करने का अवसर है न मंशा।

कोई समय सीमा नहीं --- सुधार की हमेशा गुंजाइश होती है। यदि कुलपति और शिक्षकों का चयन मानकों को ध्यान में रखते हुए प्रवीणता के आधार पर हो, कुलपति को स्वायत्तता प्राप्त हो, शिक्षकों का प्रथम कर्तव्य पढ़ना-पढ़ाना और शोध के प्रति हो, राजनीतिक हस्तक्षेप न हो, पाठ्यक्रमों का चयन कैम्पस - कम्युनिटी और कम्युनिटी-कैम्पस के आधार पर हो तो विश्वविद्यालयों और कुलपति तथा शिक्षकों की मान-मर्यादा स्थापित होने में बहुत समय नहीं लगेगा।

● **डा. रत्नेश**

गाँव की ओर लौटती सभ्यता

■ अरुण कुमार त्रिपाठी

यह समय प्रकृति को समझने, उसे बचाने, संरक्षित करने और उसकी दीर्घकालिक योजना बनाने का है न कि खामोशी से उसके अंधाधुंध दोहन के लिए मार्ग प्रशस्त करने का है। प्रकृति और उसके करीब रहने वाले गाँवों में अनंत संभावनाएँ हैं बशर्ते उसके लिए एक मुकम्मल योजना हो और उसे लागू करने वाले चरित्रवान लोग। यह अहिंसक श्रम दर्शन और अहिंसक उत्पादन वाली प्रणाली कायम करने का एक मौका है।

उदारीकरण के जोश में शहरों को पलायन कर गई भारतीय सभ्यता कोरोना -19 के प्रभाव में गाँवों को लौट रही है। प्रकृति ने इन्सान को बड़ा झटका दिया है और वह अपनी जड़ों यानी कुदरत के पास लौटने को मजबूर हुआ है। पता नहीं यह प्रकृति का अपनी सफाई के लिए सारा काम बंद करने का संदेश है या मनुष्य को उसके अत्याचारों के लिए दिया गया दंड है। लेकिन कुछ तो है जो असाधारण है और हमें उस संदेश को धरती, प्रकृति और सौर मंडल के साथ मनुष्यता के हित में समझना ही पड़ेगा। गाँव के बुजुर्ग कहा करते हैं कि ''कितनो चिड़िया उड़े आकाश चारा है धरती के पास।'' हालाँकि गाँवों से शहरों की ओर हुआ पलायन कम पीड़ादायक नहीं रहा है लेकिन वह कई वर्षों में हुआ इसलिए उसकी तकलीफ इतनी घनीभूत नहीं थी। आज उल्टी दिशा में होने वाला वही पलायन महज दो महीनों में हो रहा है इसलिए वह भयावह लग रहा है। इसमें कोई दो राय नहीं कि सरकार ने संक्रमण की कड़ी तोड़ने के लिए अचानक जो निर्णय लिया उसे झेलना मजदूरों के बस में नहीं था इसलिए वे रेलगाड़ी और बस के बिना पैदल और अपने छोटे-मोटे साधनों से ही हजारों किलोमीटर दूर स्थित अपने मूल स्थानों की ओर लौट पड़े।

यह नेहरू और अंबेडकर की शहरी सभ्यता से गाँधी की ग्रामीण सभ्यता की ओर वापसी है। नेहरू के युग में शहरों ने विभाजन से भागे शरणार्थियों को अपने भीतर जगह देकर अपना आकार बढ़ाया और बाद में उद्योगीकरण और शहरीकरण के प्रभाव में गाँव खाली होने लगे। अंबेडकर गाँवों को असुविधा, अज्ञानता और अत्याचार का केंद्र मानते थे इसलिए उन्हें गाँवों के उजड़ जाने में ही नये और समतामूलक भारत का भविष्य दिखता था। गांधी गाँवों की तत्कालीन स्थिति को आदर्श नहीं मानते थे लेकिन वे उसमें सुधार करके उसे आदर्श बनाना चाहते थे और उसे अहिंसक सभ्यता की आधारशिला बनाना चाहते थे। हालाँकि शहर से गाँवों की ओर हुई यह वापसी किसी ऐसे संकल्प के कारण नहीं हुई है लेकिन निश्चित तौर पर महामारी, मंदी और सरकारी तालाबंदी की मार के विरुद्ध यह मजदूरों का एक तरह का असहयोग आंदोलन है जो बिना किसी हिंसा के गांधी के साधनों से हो रहा है। मजदूरों ने न तो कहीं हिंसा की और न ही सरकार को कोई याचिका दी। वे तालाबंदी और भुखमरी से असंतुष्ट थे और सीधे उसका उल्लंघन करते हुए

अपने घरों की ओर लौट पड़े। यह वापसी प्रदूषण और जलवायु परिवर्तन से साफ हवा, पानी और सामान्य जलवायु की ओर भी एक वापसी है। यह लालच से जरूरत की ओर एक प्रयाण है। यहीं पर गांधी की वह बात ज्यादा सही हो जाती है कि धरती के पास सबकी जरूरत के लिए काफी है लेकिन किसी एक की लालच के लिए कम है। शायद हमारे पर्यावरण का यह सबसे प्रासंगिक एवं सशक्त सिद्धांत है और यह अचानक पुनर्जीवित हो उठा है।

श्रमिकों के इस अहिंसक महाकूच में ग्रामीण सभ्यता के पुनरुद्धार की असाधारण संभावना है। अच्छी बात है कि केंद्र सरकार आत्मनिर्भरता का नारा दे रही है और खेती तथा कुटीर उद्योग को नई ताकत देने का एलान कर रही है। सरकार ने नये राहत पैकेज में महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना यानी मनरेगा के लिए 40,000 करोड़ रुपये की अतिरिक्त राशि का एलान किया है। इससे पहले बजट में 61,000 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया था। देश की जीडीपी में 16 प्रतिशत योगदान देने वाली खेती पहले 50 प्रतिशत लोगों को रोजगार देती थी आज उस पर करीब 80 प्रतिशत लोगों को रोजगार देने का दबाव आन पड़ा है। इसका बोझ ग्रामीण अर्थव्यवस्था तभी उठा सकती है जब वहाँ निवेश बढ़ाया जाए, ग्रामीण विकास की केंद्रीय योजनाओं को ईमानदारी से लागू किया जाए और वृद्धि पर आधारित अर्थव्यवस्था की जगह पर जनकल्याण पर आधारित आर्थिक ढाँचे का निर्माण किया जाए। अगर हमारे प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी कहते हैं कि वे आपदा को अवसर में बदलने की तैयारी में हैं तो उनके नीति निर्माताओं से कहा जाना चाहिए कि यह अवसर पिछले तीस सालों से खेती के गहराते संकट को दूर करने का भी है। यह अवसर किसानों की आत्महत्या के कलंक को मिटाने का भी है। यह अवसर उस अहिंसक अर्थव्यवस्था की ओर लौटने का भी है जिसकी कल्पना महात्मा गांधी और उनके अर्थशास्त्री शिष्य जेसी कुमारप्पा ने की थी। जेसी कुमारप्पा ने कहा था कि खेती ही वह उद्यम है जो प्रकृति से कम से कम हिंसा करते हुए किया जा सकता है। वे औद्योगिक सभ्यता को सर्वाधिक हिंसक मानते थे और उनका कहना था कि इस सभ्यता में युद्ध और विनाश अनिवार्य है। खेती पर्यावरण का न्यूनतम विनाश करती है और उद्योग अधिकतम। अगर मनुष्य को प्रकृति के साथ तालमेल बनाकर शांति पूर्वक रहना है तो उसे प्रकृति के इस संदेश को समझना होगा। यह अवसर है जब मनुष्य अपनी जरूरतों को घटाकर और उपभोक्तावादी प्रवृत्ति को छोड़कर नई सभ्यता की ओर कदम बढ़ा सकता है। हालाँकि बहुत सारे सवाल हैं और वे गैर जरूरी भी नहीं हैं कि इतनी दूर आकर आधुनिक इन्सानी और विशेषकर मशीनी सभ्यता क्या पीछे लौट सकती है? क्या यूरोप इस तरह से गाँवों को लौट सकता है जिस तरह इंडिया गाँवों की ओर लौटा है?

इन सवालों का कोई सीधा और सरल उत्तर नहीं है। लेकिन इनका उत्तर तभी मिल सकता है जब हम भारत से यूरोप और अमेरिका तक फैले मौजूदा संकट को समझें और उसके मूल प्रश्नों पर विचार करें। मौजूदा संकट की तुलना 1930 की महामंदी से की जा रही है। उस समय की मशहूर फोटो पत्रकार मार्गरिट बर्क ह्वाइट ने एक चित्र खींचा था जिसमें भोजन के लिए लंबी कतारें लगी थीं। उन कतारों के साथ ही वहाँ लगे विज्ञापन के एक बोर्ड पर एक ऐसे परिवार का चित्र था जो अपनी कार में बैठा हुआ है और उस पर लिखा है-- दुनिया का सर्वोच्च जीवन स्तर। आज ठीक 90 साल बाद वह कहानी एक अलग रूप में दोहराई जा रही है। आज 2020 में अमेरिका में फूड बैंक के सामने कारों की दो मील लंबी कतारें लगी हैं। 90 साल पहले की और आज की इन कतारों में सिर्फ कारों का अंतर है वरना इन्सान की

बेबसी एक जैसी है। प्रकृति और महामारियों की समझ रखने वाले विशेषज्ञों का कहना है कि भोजन का यह संकट इसलिए पैदा हुआ है क्योंकि हमने खाद्य प्रणाली को तोड़ दिया है। औद्योगिक खेती और फैक्ट्री फार्म ने आत्मनिर्भरता के तंत्र को ही बिगाड़ दिया है। इसलिए एक ओर प्रकृति और उसकी बायोडायवर्सिटी के विनाश से वायरस का हमला हो रहा है तो दूसरी ओर परिवहन केंद्रित खाद्य प्रणाली ने खाद्य का संकट पैदा कर दिया है। दरअसल यह खाद्य नहीं प्रणाली का संकट है। वरना प्रकृति में खाद्य पैदा करने की क्षमता तो है ही। भारत में भी नवउदारवादी अर्थशास्त्रियों ने कहना शुरू किया था कि खाद्य भंडार कम करो और सिर्फ 20 प्रतिशत आबादी का पेट भरने के लिए अनाज रखो क्योंकि रखरखाव और उसे इकट्ठा करने में ज्यादा खर्च आता है जबकि आबादी का बड़ा हिस्सा इतना कमा रहा है कि वह बाजार से अनाज खरीद कर खा सके। कल्पना कीजिए अगर यह बात मान ली गई होती, एपीएमसी को खत्म कर दिया गया होता और आज सरकार के पास 7.7 करोड़ टन अनाज का भंडार न होता तो सरकार और इस देश की क्या स्थिति होती। शुक्र मनाइए कि खाद्य सुरक्षा की इस प्रणाली के चलते हमारे पास जरूरत से तीन गुना ज्यादा अनाज संरक्षित है। लेकिन ग्रामीण व्यवस्था पर गांधी का सुझाव इस प्रणाली को और भी मौलिकता की ओर ले जाता है। गांधी लंबी लंबी मालगाड़ियों के माध्यम से दूर से अनाज लाने और ले जाने के खिलाफ थे। वे चाहते थे कि स्थानीय स्तर पर ही इतना उत्पादन हो कि लोग अपनी जरूरत के लिए आत्मनिर्भर रहें। हर गाँव को सिर्फ नमक के बराबर कुछ सामानों को बाजार से लाने की जरूरत रहे बाकी वह अपनी आवश्यकता की सारी वस्तुएँ स्थानीय स्तर पर उत्पादित कर सके। उन्होंने दैवी नियम का हवाला देते हुए कहा था कि ईश्वर ने मनुष्य की सृष्टि इसलिए की है कि वह अपनी रोटी के लिए श्रम करे। जो लोग बिना श्रम किए भोजन करते हैं वे चोर हैं। प्रकृति चाहती है कि मनुष्य अपनी रोटी के लिए पसीना बहाए। वे कहते हैं कि हमने टालस्टाय के रोटी के लिए श्रम के सिद्धांत को अपनाने से पहले रस्किन की किताब 'अनटू दिस लास्ट' पढ़ी थी और उसका सर्वोदय के रूप में अनुवाद भी किया था।

उनके अनुसार सबसे पहले यह सिद्धांत टीएम बोन्डरिफ ने दिया था कि मनुष्य को रोटी के लिए अपने हाथों से श्रम करना चाहिए। टालस्टाय ने उसे प्रचारित किया। गांधी रोटी के लिए श्रम के इस सिद्धांत को श्रीमद्भगवत गीता में भी पाते हैं। उनके अनुसार गीता का तीसरा अध्याय कहता है कि जो व्यक्ति यज्ञ किए बिना भोजन करता है वह चोरी का अन्न खाता है। यहाँ यज्ञ का अर्थ हवन पूजा नहीं शारीरिक श्रम ही है। गांधी कहते हैं कि रोटी के लिए श्रम करने के नियम का पालन करने से समाज की संरचना में एक मौन क्रांति आएगी। तब जीवन के लिए संघर्ष करने के बजाय परस्पर सेवा के लिए संघर्ष करने में मानव की विजय मानी जाएगी। ऐसा नहीं है कि गांधी ने इन बातों को सिर्फ चमत्कारिक प्रभाव डालने के लिए कहा। उन्होंने दक्षिण अफ्रीका के फीनिक्स और टालस्टाय फार्म जैसे आश्रमों से लेकर साबरमती और वर्धा के सेवाग्राम के आश्रमों तक इन नियमों का पालन भी किया। पर उनकी सबसे बड़ी मुश्किल और असफलता यह है कि वे अपने को बेहद साधारण मनुष्य मानते थे और समझते थे कि जो काम वे कर सकते हैं वह कोई भी कर सकता है। यहीं पर पत्रकार विन्सेंट सीन लिखते हैं कि बुद्ध, ईसा मसीह और गांधी का यही सबसे बड़ा गुण है और यही सबसे बड़ी विफलता है। उन्होंने अपने को साधारण मनुष्य ही माना और हर इन्सान की क्षमता को अपने बराबर ही माना। गांधी जिस सामुदायिकता की कल्पना का गाँव देख रहे थे वह भारत में न तो उनके युग में था और न ही आज

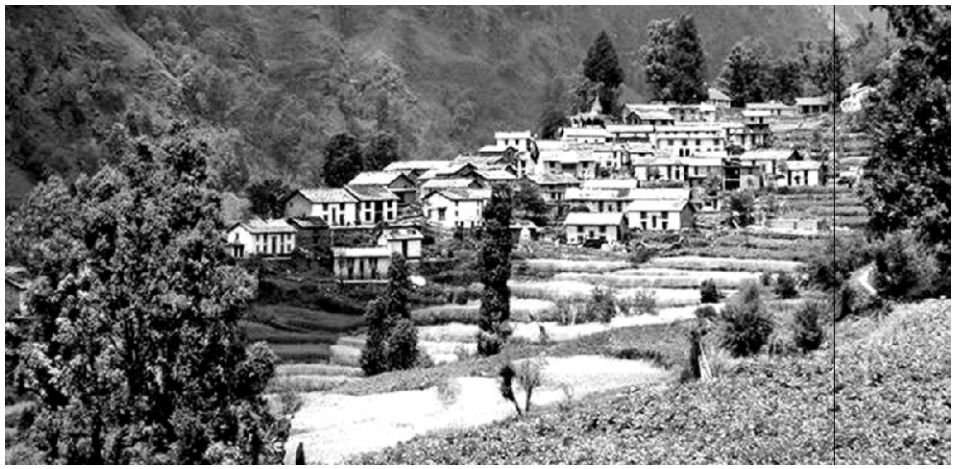

निर्मित हो पाया है। उसका निर्माण एक प्रयास करके ही हो सकता है। यहीं पर गांधी के साथ अंबेडकर और लोहिया के उस दर्शन को साथ रखना होगा जिसमें जातिगत व्यवस्था को मिटाकर या कम से कम कमजोर करके ही गाँवों को आदर्श रूप दिया जा सकता है। जातिगत व्यवस्था इस समाज का सबसे बड़ा भ्रष्टाचार और अत्याचार है। उसके चलते न तो केंद्र सरकार की गाँवों के लिए चलने वाली दो दर्जन योजनाएँ परवान चढ़ पाती हैं और न ही गाँवों का युगानुकूल स्वरूप उभर पाता है। इसी के साथ भूमि सुधार का मसला भी अहम हो जाता है।

आजकल गोरक्षा पर बड़ा जोर है। महात्मा गांधी भी गोरक्षक थे। लेकिन उनकी गोरक्षा धार्मिक कट्टरता नहीं आस्था और अर्थशास्त्र से जुड़ी थी। इसीलिए उन्होंने पशुपालन के लिए सहकारिता का सिद्धांत अपनाने का सुझाव दिया था। सहकारिता के तहत अगर पशुपालन किया जाएगा तो न तो पशुओं को मारने की समस्या पैदा होगी और न ही आवारा पशुओं से खेती को नुकसान होगा। इसके तहत दूध और डेयरी उत्पादों का कारोबार भी बढ़ेगा और ग्रामीण जीवन में एक सहकार बनेगा। ऐसा नहीं है कि सहकारिता का प्रयोग अपने में कोई कल्पना मात्र है। गुजरात, महाराष्ट्र से लेकर देश के कई हिस्सों में उस प्रयोग को सफलतापूर्वक चलाया भी गया है। जब गाँवों में सहकारिता के आधार पर पशुपालन होगा तो गाँवों की सामलात देह यानी सामुदायिक संपत्ति की भी रक्षा होगी। चारागाहों, वनों, तालाबों पर कब्जे नहीं होंगे। लोग उनका बचाव करके गाँव की प्राकृतिक संपदा को समृद्ध करेंगे। गांधी कहते हैं, ''मेरा पक्का विश्वास है जब तक हम सहकारी खेती को नहीं अपनाएँगे तब तक खेती के पूरे फायदे हमें नहीं मिलेंगे। क्या यह बात समझना कठिन है कि सौ छोटे-छोटे खेतों पर जैसी तैसी खेती करने की तुलना में यह कहीं बेहतर है कि गाँव के सौ परिवार अपनी जमीन पर सामूहिक रूप से खेती करें और उसकी आमदनी को आपस में बाँट लें? और जो बात खेती पर लागू होती है ठीक वही पशुओं पर भी लागू होती है।'' इन्हीं सामुदायिक संपदा की रक्षा के साथ प्राकृतिक चिकित्सा का भी काम चलेगा और ग्रामीणों की प्रतिरोधक क्षमता भी विकसित होगी और उन्हें डाक्टरों, हकीमों और अस्पतालों की जरूरत भी नहीं होगी। यहीं गांधी जिस चीज पर सर्वाधिक जोर देते हैं वह है सफाई और नशामुक्ति। अगर गाँवों में शराब के ठेके खोले जाएँगे और गंदगी रहेगी तो न तो उनका समाज अच्छा बन सकता है और न ही उनका स्वास्थ्य ठीक रह सकता है। इसके विकल्प के तौर पर गाँवों मे खेल और

मनोरंजन की सम्यक व्यवस्था होनी चाहिए जिसका नितांत अभाव है। लेकिन ग्रामीण अर्थव्यवस्था सिर्फ खेती करने से नहीं तैयार होती। न ही खेती में सभी को रोजगार मिल सकता है और न ही बहुत आमदनी हो सकती है। उसके लिए कुटीर उद्योग और कृषि उत्पादों से जुड़े उद्योगों की भी जरूरत होगी। इसीलिए हमें ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर गांधी के चिंतन के साथ जेसी कुमारप्पा को भी शामिल करना होगा। उससे एक नई संरचना का जन्म होगा। लेकिन यह सब मौजूदा स्थितियों के रहते संभव नहीं होगा। क्योंकि मौजूदा स्थितियों में तो किसान अपने खेतों की गोभी और मूली जैसी सब्जियों को बाजार ले जाने की बजाय वहीं जोत दे रहे हैं। वे टमाटर सड़कों पर बिखेर रहे हैं। इस समय बाजार में चाय, काफी, काजू और मसालों के दाम गिर गए हैं। मुर्गी पालन उद्योग बुरी तरह से प्रभावित हुआ है। यह सब कृषि उत्पादों का उचित मूल्य न मिलने के कारण हो रहा है। खेती में सन 2010-11 से लेकर सन 2017-2018 तक सार्वजनिक क्षेत्र का निवेश 0.3 प्रतिशत से 0.4 प्रतिशत तक है। एक आँकड़े के अनुसार सन 2000 से लेकर 2016-17 के बीच भारतीय किसानों को 45 लाख करोड़ का नुकसान हुआ है। अगर उसके इस नुकसान की भरपाई कर दी जाए तो गाँवों को आगे बढ़ने से कोई रोक नहीं सकता। इस बात को कभी आदिवासी और खेती मामलों के विशेषज्ञ डा. ब्रह्मदेव शर्मा दूसरे तरीके से कहते थे। उनका कहना था कि भारत में छह लाख गाँव हैं। उनमें से हर गाँव से कम से कम एक करोड़ रुपए की लूट हुई है। अगर वह रकम गाँवों को वापस कर दी जाए तो उनकी तरक्की तेज होगी।

आज तालाबंदी के कारण देश की जलवायु शुद्ध हुई है। अब बड़ी चुनौती यह है कि स्थितियाँ सामान्य होने के बाद उसे कैसे कायम किया जाए। दिल्ली जैसे शहरों में पीएम 2.5 के घनत्व में 71 प्रतिशत की कमी आई है। नाइट्रिक आक्साइड में भी 71 प्रतिशत गिरावट दर्ज की गई है। नवी मुंबई में डेढ़ लाख फ्लैमिंगो देखी गई हैं। यह पक्षियों की संख्या में 25 प्रतिशत की वृद्धि है। हालाँकि बहुत सटीक आँकड़े अभी नहीं आए हैं लेकिन गंगा, यमुना और दूसरी नदियों का प्रदूषण कम हुआ है। हरिद्वार का पानी साफ हुआ है। उत्तराखंड के सहारनपुर से गंगोत्री की चोटी दिखने लगी है। ऐसे ही उत्तरी बिहार के कई इलाकों से हिमालय के दृश्य देखने की घटनाएँ हुई हैं।

गाँव और प्रकृति की ओर वापसी की इन तमाम घटनाओं के बावजूद इस बात की गारंटी नहीं है कि विकास की यही दिशा रहेगी। सरकार ने इस समय को उदारीकरण तेज करने के अवसर के रूप में भी देखा है। उदारीकरण के साथ मेक इन इंडिया का नारा भले लगाया जा रहा हो लेकिन उसके साथ मजदूरों के अधिकार छीने जाने, विदेशी निवेश को अंधाधुंध आमंत्रित करने, किसानों के खेत छीने जाने और प्रकृति का नाश करने वाली योजनाओं को अंधाधुंध मंजूरी देने का पैकेज भी जुड़ा होता है। मजदूरों के हक छीने जाने का विरोध स्वयं भाजपा के मजदूर संगठन भारतीय मजदूर संघ ने भी किया है। देश के 200 पर्यावरण कार्यकर्ताओं ने पर्यावरण मंत्री को पत्र लिखकर चेताया है कि इस बीच 31 परियोजनाओं को तीव्रता से मंजूरी दी गई है जिनसे 15 टाइगर रिजर्व प्रभावित होते हैं। निश्चित तौर पर यह समय प्रकृति को समझने, उसे बचाने, संरक्षित करने और उसकी दीर्घकालिक योजना बनाने का है न कि खामोशी से उसके अंधाधुंध दोहन के लिए मार्ग प्रशस्त करने का है। प्रकृति और उसके करीब रहने वाले गाँवों में अनंत संभावनाएँ हैं बशर्ते उसके लिए एक मुकम्मल योजना हो और उसे लागू करने वाले चरित्रवान लोग। यह अहिंसक श्रम दर्शन और अहिंसक उत्पादन वाली प्रणाली कायम करने का एक मौका है। आइए देखते हैं हम उसे कितना कर पाते हैं ?

(Email : tripathiarunk@gmail.com)

कोरोना काल
क्या हो गया और क्या होगा

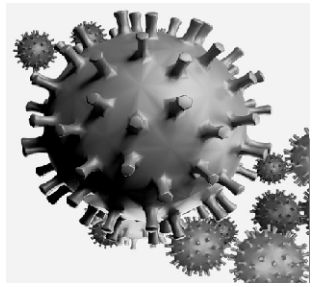

■ राजेन्द्र हरदेनिया

कोरोना वायरस 'कोविड-19' के प्रहार और प्रसार से सारी दुनिया त्राहिमाम कर रही है। चीन के वुहान में जन्मे ऐसे एक नन्हे से कण, जिसे इलेक्ट्रान माइक्रोस्कोप से ही देखा जा सकता है, जिसकी साइज 125 नेनोमीटर है, (नेनोमीटर अर्थात एक मीटर का एक अरबवाँ भाग) ने अपनी मारक क्षमता से दुनिया को अपने घुटनों पर ला दिया है। दुनिया भर में संक्रमितों की संख्या दिन रात बढ़ती जा रही है वहीं मौतों का सिलसिला भी उसी रफ्तार से बढ़ता जा रहा है। अभी तक न तो इसकी सटीक दवा ही तैयार हुई है, और न ही वैक्सीन बन पाई है। यद्यपि दुनिया भर के वैज्ञानिक, औषधि विज्ञानी, डाक्टर इसकी सटीक दवाई और वैक्सीन की खोज में दिन रात लगे हुए हैं।

इस सदी के महान वैज्ञानिक स्टीफन हाकिंग ने बीबीसी द्वारा 20 जनवरी 2016 को आयोजित विश्व प्रसिद्ध 'रीथ लेक्चर्स' के दौरान एक प्रश्न के उत्तर में चेतावनी देते हुए कहा था कि मानव प्रजाति के आत्मघाती विनाश का खतरा बढ़ रहा है। दुनिया ज्यादा से ज्यादा एक हजार साल में नष्ट हो जाएगी। उसमें भी मौजूदा सौ साल भारी संकट के हैं। मानव ने विज्ञान और टेक्नोलाजी में जो तरक्की की है उसी से खतरा है। दुनिया के अस्तित्व को खतरा तीन बातों से है, पहला परमाणु हथियार, दूसरा जैविक हथियार और तीसरा ग्लोबल वार्मिंग। उन्होंने कहा था कि आर्टिफीशियल इंटेलीजेंस भी मानव अस्तित्व के लिए खतरा है। स्टीफन हाकिंग की भविष्यवाणी जैविक हथियार का उल्लेख हुआ था उसके ही तारतम्य में 'कोरोना वायरस कोविड-19' एक अति शक्तिशाली जैविक हथियार समझ में आता है जो इंस्टीट्यूट आफ वायरालाजी, वुहान की प्रयोगशाला में तैयार किया गया। ऐसा लगता है कि जैसे इस वायरस से फैली यह महामारी मानव प्रजाति के महाविनाश की रिहर्सल कर रही हो।

कोरोना महामारी के प्रसार को रोकने के लिए दुनिया में जो कदम उठाए गए हैं, उनमें लाकडाउन एक शक्तिशाली कारगर उपाय है । देश में 25 मार्च को पहला लाकडाउन 1.0 लागू किया गया था। अब लाकडाउन 3.0 समाप्त हुआ और 18 मई से लाकडाउन 4.0 शुरू हो गया है। चौथे लाकडाउन के शुरू होते समय 18 मई को देश और दुनिया में संक्रमण की स्थिति देखें। दुनिया में 48,02,037 लोग संक्रमित हैं तथा 3,16,673 मौतें हो चुकी हैं। भारत में 96,169 लोग संक्रमित हैं और 3,029 मौतें हुई हैं। अमेरिका में 15,27,664 लोग संक्रमित हैं और 90,000 मौतें हो चुकी हैं । भारत की आबादी एक अरब 32 करोड़ है वहीं अमेरिका की आबादी 33 करोड़ है यानी भारत से लगभग एक अरब कम है। जल्दी ही भारत में संक्रमितों का आँकड़ा एक लाख को पार कर जाएगा, वहीं अमेरिका में इस महामारी से होने वाली मौतों का आँकड़ा भी एक लाख को पार कर जाएगा। ऐसे ही आँकड़े दुनिया के हर देश के हैं जिन्हें विश्व स्वास्थ्य संगठन जारी कर रहा है। कोरोना वायरस का यह 'वर्ल्ड-ओ-मीटर' दिन रात घूम रहा है और जब आप यह आलेख पढ़ रहे होंगे उस समय तक उपरोक्त आँकड़े काफी पुराने हो चुके होंगे। नये आँकड़े काफी बढ़े हुए होंगे। यह मीटर कब

रुकेगा किसी को पता नहीं है।

कोरोना वायरस कोविड-19 पर चर्चा करने के पहले 102 साल पहले आई एक महामारी के बारे में एक नजर डाल लें ताकि इतिहास से कोई सबक लिया जा सके। सन 1918 में स्पेनिश फ्लू के नाम की महामारी ने दुनिया को बहुत नुकसान पहुँचाया था। इसे महामारी की जननी कहा जाता है। पूरी दुनिया की एक तिहाई आबादी इससे संक्रमित हुई थी। लगभग दस से बीस करोड़ लोग इस बीमारी से काल कलवित हुए थे। उस समय विश्वयुद्ध का दौर था। उस समय जितने लोग स्पेनिश फ्लू से मरे थे उतने लोग तो विश्वयुद्ध में नहीं मरे थे। भारतीय सैनिकों का एक युद्ध पोत 29 मई 1918 को मुम्बई बंदरगाह पर आकर 48 घंटे तक लंगर डाले रुका रहा था और यह बीमारी भी उसी के साथ आई थी और मुम्बई से ही पूरे देश में फैल गई थी। इसीलिए इसे मुम्बई बुखार के नाम से भी जाना जाता है। भारत में अँगरेजों का शासन था। वे भारत में इस महामारी की रोकथाम के प्रति उदासीन थे। इस बात के लिए महात्मा गांधी ने अँगरेज सरकार की तीखी आलोचना की थी। विदेश से जहाज के जरिये आई इस महामारी की चपेट में भारत भी बुरी तरह आ गया था तथा यहाँ की कुल आबादी के 6 प्रतिशत से अधिक लोग काल कलवित हुए थे। सन 1921 में हुई जनगणना के मुताबिक भारत की आबादी लगभग 25.13 करोड़ थी। विभिन्न स्रोतों से प्राप्त जानकारी के अनुसार भारत में हुई मौतों का आँकड़ा एक करोड़ बीस लाख से लेकर एक करोड़ अस्सी लाख के बीच है। उस समय भारत की अर्थव्यवस्था बुरी तरह ध्वस्त हो गई थी। यह महामारी लगभग ढाई साल तक टिकने के बाद सन 1920 में समाप्त हुई थी। उस दौर में अमेरिका के दो शहरों की कहानी ध्यान देने योग्य है। विश्वयुद्ध के लिए आर्थिक मदद एकत्र करने के लिए दो शहरों फिलाडेल्फिया तथा सेंट लुईस में सार्वजनिक कार्यक्रम आयोजित किए जाने की घोषणा हुई थी। उसी बीच स्पेनिश फ्लू का प्रकोप हुआ। फिलाडेल्फिया के गवर्नर ने घोषित तारीख पर कार्यक्रम संपन्न कराया जिसमें काफी भीड़ जुटी, लेकिन सेंट लुईस के गवर्नर ने महामारी न फैले इस उद्देश्य से भीड़ एकत्रीकरण रोकने के लिए घोषित कार्यक्रम रद्द कर दिया। कार्यक्रम के एक माह बाद फिलाडेल्फिया में महामारी फैली और उसके कारण दस हजार लोग मरे वहीं सेंट लुईस में सिर्फ सात सौ लोगों की मौत हुई। यह नतीजा था सोशल डिस्टेंसिंग का जिसका फायदा सेंट लुईस ने उठाया। तत्समय अमेरिका की आबादी साढ़े दस करोड़ थी जिसमें 6 लाख 75 हजार मौतें हुई थीं। सोशल डिस्टेंसिंग का यह अनुभवजन्य ज्ञान है जिसका फायदा हम सौ साल बाद भी उठा रहे हैं। यह माना जाता है कि उस समय अपनाए गए लाकडाउन, सोशल डिस्टेंसिंग और मास्क ने ही उस समय स्पेनिश फ्लू महामारी जो ढाई साल तक टिकी रही, उससे काफी हद तक दुनिया को बचाया। एक प्रचलित कहावत है कि इतिहास अपने को दुहराता है। 100 साल बाद कोविड-19 के रूप में महामारी इतिहास दुहरा रही है। उस समय अपनाए गए तरीके आज भी उतने ही प्रभावी, सार्थक एवं उपयोगी हैं।

दुनिया ने कोरोना वायरस से निपटने के तौर तरीके समझे, सीखे और अमल में लाना शुरू किया। इसका प्रसार रोकने के लिए इसकी चेन (शृंखला) तोड़ना जरूरी है। भारत में साबुन से हाथ धोने या अल्कोहल युक्त सेनेटाइजर से सेनेटाइज करने, परस्पर कम से कम दो गज दूरी बनाए रखने, बाहर नहीं निकलने तथा घर पर ही रहने जैसे कई नियमों की आमजन को लगातार इस तरह जानकारी दी ताकि वह लोगों के मन मस्तिष्क में बखूबी बैठ जाए। निर्धारित नियमों का प्रशासनिक पहल के जरिये कड़ाई से पालन करवाया गया। लोग इकट्ठे ही न हों इसके लिए लाकडाउन लागू किया गया।

लाकडाउन को सरल उदाहरण से समझें। बच्चे एक खेल खेलते हैं, खेल का नाम है 'स्टेच्यू' या 'मूर्ति'। खेलने वाले सभी बच्चे एक गोल परिधि में दौड़ते रहते हैं और खिलाने वाला मानीटर

जब अचानक स्टेच्यू या मूर्ति बोलता है तो सभी बच्चे जो जहाँ है तथा जिस भी मुद्रा में है उसे उसी रूप में मूर्तिवत ठहर जाना है। मानीटर के नये आदेश तक सभी बच्चों को उसी रूप में मूर्तिवत रहना है, जो चूक जाता है वह आउट हो जाता है। कोरोना ने अचानक आकर, लागू किए गए लाकडाउन के जरिए पूरे देश के लोगों को मूर्ति बना दिया। जो जहाँ था वह अचानक आदेश मिलते ही थम गया। ट्रेनों के पहिए थम गए, बसों के पहिए थम गए, निजी वाहनों के पहिए थम गए। सबकुछ ठप हो गया। कल कारखाने बंद हो गए, दुकानें बंद हो गईं, स्कूल, कालेज, विभिन्न दफ्तर सब बंद हो गए, लोगों का सड़क पर चलना फिरना बंद हो गया। कारखानों की चिमनियों ने धुआँ उगलना बंद कर दिया, गंदा पानी निकलना बंद हो गया, वाहनों के एग्झास्ट पाइपों से भी धुआँ निकलना रुक गया। चालू रहे तो सिर्फ अस्पताल, डाक्टरों के क्लीनिक और दवाई की दुकानें। शेष सब लोग विश्राम की मुद्रा में हो गए। सक्रिय रहे तो सिर्फ कोरोना वारियर्स जिनमें अस्पताल के डाक्टर्स, नर्से और अन्य स्टाफ, सफाईकर्मी, सड़कों पर लोगों का आवागमन रोकने तैनात पुलिस स्टाफ शामिल हैं।

लाकडाउन के कई सकारात्मक एवं कई नकारात्मक परिणाम सामने आए हैं। सबसे सकारत्मक परिणाम तो पारिस्थितिकी, पर्यावरण और प्रकृति पर पड़ा है। कई जानकारियाँ ऐसी आई हैं जिनके कारण स्वाभाविक प्रसन्नता की अनुभूति हुई है, मन को सुकून मिला है। लाकडाउन के बीच सबसे अच्छी खबर यह आई है कि दिल्ली समेत देश के तमाम दूसरे शहरों में वायु, जल और ध्वनि प्रदूषण में अप्रत्याशित रूप से भारी कमी आई है। जिस तरह से गंगा, यमुना, नर्मदा आदि नदियों को हम हजारों करोड़ों रुपये सालाना खर्च करके भी स्वच्छ नहीं कर पा रहे थे, उसको लाकडाउन के चंद दिनों ने स्वच्छ एवं निर्मल बनाकर साफ कर दिया। नदियाँ साफ हो गई हैं, आसमान साफ हो गया है। अब विभिन्न तरह के पक्षी आसमान में सैर करते दिख रहे है तथा चिड़ियों की चहचहाट, कोयल की कूक, टिटहरी की टेंटें समेत पक्षियों का कलरव सुनाई पड़ रहा है। सड़कों पर वाहनों का शोर नहीं है। ऐसा लगता है कि अचानक दुनिया बदल गई हो। होशंगाबाद जिले पिपरिया विकास खण्ड में नर्मदा किनारे स्थित सांडिया घाट पर जाकर पत्रकार आलोक हरदेनिया ने टीडीएस मीटर से नर्मदा के बहते पानी की टीडीएस की मात्रा की जाँच की। टीडीएस (टोटल डिजालव्ड साल्ट्स) की मात्रा 85 से 95 थी जो लगभग मिनरल वाटर जैसी है। वहाँ पानी बिलकुल साफ था। छोटी-छोटी मछलियाँ वहाँ अठखेलियाँ करती दिखीं। वहाँ पर मिले कुछ सयाने लोगों ने बताया कि नर्मदा में इतना शुद्ध पानी उन्होंने करीब चालीस साल पहले देखा था। ऐसी ही रपटें विभिन्न नदियों के बारे में लगातार प्रकाशित हो रही हैं। लाकडाउन के कारण नर्मदा से रेत का अवैध उत्खनन रुक गया तथा नदी की सेहत में जबरदस्त सुधार आ गया। बहुमत के डिजिटल एडीशन में वरिष्ट पत्रकार श्री सोमदत्त शास्त्री ने इस रिपोर्ट को प्रकाशित किया है। एक माह का लाकडाउन तो 17 महानगरों के लिए वरदान बन कर आया क्योंकि वहाँ के प्रदूषण के स्तर में भारी गिरावट दर्ज की गई। जिस दिल्ली में प्रदूषण के चलते आसमान में धूल एवं धुएँ के गुब्बार के अलावा और कुछ नजर नहीं आता था आज उस दिल्ली के नीले आसमान में टिमटिमाते तारों का समूह नजर आते है। दिल्ली के प्रदूषण पर अगर प्रदूषण विभाग के आँकड़ों की बात करें तो दिल्ली के आनंद विहार स्टेशन पर वर्ष 2018 और वर्ष 2019 के दौरान 5 अप्रैल को हवा को जहरीली बनाने वाले पीएम 2.5 (पार्टिकुलेट मैटर) का स्तर 300 के ऊपर था जो 5 अप्रैल 2020 को लाकडाउन की वजह से काफी नीचे गिर कर 101 के स्तर पर आ गया था। पार्टिकुलेट मैटर जिसे हिन्दी में कणिका तत्व कहा जाता है, इनमें सल्फेट, नाइट्रेट्स, अमोनिया, सोडियम क्लोराइड, ब्लैक कार्बन, खनिज धूल तथा जल ये पार्टिकुलेट मैटर हैं। ये सब अत्याधिक हानिकारक वायु प्रदूषक हैं, जो श्वसन के जरिये फेफड़ों में

एकत्रित होकर श्वसन, हृदय संबंधी रोगों तथा कैंसर की संभावनाओं को बढ़ा देते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार 10 माइक्रोन या उससे कम व्यास के कण स्वास्थ्य के लिए अत्यंत हानिकारक हैं। ये कण फेफड़ों में अत्याधिक गहराई तक पहुँच सकते हैं। इनके कारण लोगों की औसत आयु घट रही है। सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश ने तो दिल्ली को गैस चेम्बर की संज्ञा दी थी। दिल्ली में श्री केजरीवाल ने हवा में इन्हीं कणिका तत्वों की मात्रा घटाने के लिए ही आड-ईवन फार्मूला लागू किया था। उससे कुछ खास बात बनी नहीं, मगर वह काम सफलतापूर्वक लाकडाउन ने कर दिखाया। आसमान साफ होने के कारण काठमांडू से 200 किमी दूर एवरेस्ट की चोटी साफ दिखाई देने लगी।

सड़कों पर से वाहन हट जाने से पेट्रोल, डीजल की खपत एकदम गिर कर लगभग दस प्रतिशत रह गई। इससे देश भर में सड़कों पर दुर्घटना से होने वाली मौतों घट गईं, जिससे मृत्यु दर में गिरावट दर्ज की गई। हिन्दुस्तान टाइम्स में प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार मुम्बई में अप्रैल 2020 में होने वाली मौतों में 17.93 प्रतिशत गिरावट दर्ज की गई चंडीगढ़ में 15.5 प्रतिशत, जयपुर में 73 प्रतिशत तथा इन्दौर में 78 प्रतिशत गिरावट दर्ज की गई। यह गिरावट अप्रैल 2019 माह दर्ज मौतों की तुलना में था। अप्रैल 2020 की यह गिरावट 2020 के जनवरी, फरवरी और मार्च महीने की तुलना में दर्ज हुई, क्योंकि लाकडाउन 25 मार्च 2020 से शुरू हुआ था। उत्तरप्रदेश के एक गंगा किनारे बने शवदाह गृह के प्रभारी के अनुसार वहाँ पहले दुर्घटना में मृत दाह संस्कार के लिए लाए जाने वाले शवों की संख्या प्रतिदिन लगभग 10 होती थी जिनमें दुर्घटना के अलावा आपराधिक कृत्य, हत्या में मारे गए शव भी होते थे। लेकिन 22 मार्च के बाद एक माह में कुल 43 मृतकों का शवदाह किया गया जो प्राकृतिक मौत मरे थे जो पंजी पुस्तिका में पंजीबद्ध हैं। अर्थात लाकडाउन से वाहन दुर्घटनाओं के रुकने के अलावा अपराध भी घटे। कई निजी चिकित्सकों ने अपने क्लीनिक बंद कर दिए। उनके यहाँ सामान्य बीमारियों के इलाज को लेकर जुटने वाली भीड़ गायब हो गई। शायद कोरोना के आतंक ने छोटी-मोटी बीमीरियों को वैसे ही चलता कर दिया न डाक्टर की जरूरत पड़ी और न ही दवाई की, शायद मनोवैज्ञानिक इलाज हो गया।

ऐसा लगता है कि आपाधापी वाली तेज रफ्तार अचानक थम गई। समाज ने एक नये अंदाज में जीना शुरू कर दिया। लोगों ने घर की सीमा को लक्ष्मण रेखा मानते हुए स्वयं को घर के भीतर सीमित कर दिया। कुछ लोग हर समय अपनी दुनिया में व्यस्त रहते थे वो लोग अब परिवार के लिए आजकल अपनी आदतों में बदलाव करके माँ, बाप, भाई, बहन, पत्नी, बच्चों के साथ खुश है और उनको भरपूर समय देने के लिए इस अवसर का पूरा सदुपयोग कर रहे हैं। अब बेवजह खर्चे नहीं हो रहे हैं। कभी पड़ोसियों से बात तक न करने वाले लोग आज आसपास में घर की बालकनी में खड़े होकर बतिया रहे है। सड़के खाली पड़ी हैं जिन पर न तो वाहन ही हैं और न ही लोग। इसलिए कई जगह से रिपोर्टे मिलीं कि खुली सड़कों पर वन्य पशु विहार करते नजर आए। देश के कई हिस्सों में ऐसे दुर्लभ नजारे देखने को मिले हैं जहाँ वन्य जीव हिरन, हाथी, बारहसिंगा, तेंदुआ आदि सड़कों पर तथा आबादी के बीच निकलकर बेखौफ होकर घूम रहे हैं। प्रकृति के साथ गजब का तालमेल दिखा है। यह एक अलग ही तरह का

अंदाज है जो अचानक लागू हुए लाकडाउन ने मुहैया कराया है। दफ्तर से किए जाने वाले काम को बिना दफ्तर जाए घर से ही निपटाना यानी 'वर्क फ्राम होम' की नई संस्कृति की शुरुआत भी कई जगह हो गई है। बड़ी कक्षाओं के छात्रों, कोचिंग संस्थानों तथा आई.आई.टी. जैसे संस्थानों ने आन लाइन अध्यापन का सिलसिला शुरू कर दिया है। इनसे नई संभावनाएँ प्रकट हुई हैं।

कोरोना के प्रकोप से जिंदा बचने के बाद भी जिंदा रहने के लिए भोजन भी तो चाहिए और भोजन प्राप्त करने के लिए पैसा चाहिए। जब काम ही छिन जाएगा तो पैसा कहाँ से आएगा। लाकडाउन का दूसरा और खतरनाक पहलू यह है कि सबसे ज्यादा दुष्प्रभाव अर्थव्यवस्था पर पड़ा है, बहुत से लोगों की रोजी रोटी छिन गई है तथा मजदूरों की जिंदगी सड़क नाप रही है। असंगठित क्षेत्र के दिहाड़ी मजदूर जो रोज श्रम करके अपनी आजीविका कमाते हैं, लाकडाउन में न तो उन्हें घर से निकलने मिलेगा न ही कहीं काम ही मिलेगा, उनका ध्यान रखते हुए हरेक को नि:शुल्क राशन वितरित किया गया तथा हरेक के बैंक जनधन खाते में निश्चित राशि डाली गई, ताकि कोई भूखा न रहे। मुहल्ले की गुमटीनुमा छोटी-छोटी दुकानों से लेकर बड़े-बड़े माल सब बंद हो गए। सभी व्यापारिक संस्थान बंद। ग्राहकों का घर से निकलना ही बंद, खरीद बिक्री सब बंद।

नवजीवन द्वारा प्रकाशित एक रपट के अनुसार, भारतीय अर्थव्यवस्था का बड़ा आधार अनौपचारिक क्षेत्र है। अनौपचारिक क्षेत्र का अर्थ है कि इसमें होने वाली आर्थिक गतिविधियों पर सीधे टैक्स नहीं लगता। हो सकता है इसमें बहुत से काम धंधे पंजीकृत भी न हों। वह सारे काम धंधे जो पारिवारिक श्रम इस्तेमाल करते हैं, पान वाला, सब्जी वाला, फेरी से सामान बेचने वाले, छोटे दुकानदार, भवन तथा अन्य निर्माण कार्य में लगे मजदूर, मजदूरों के ठेकेदार, खेतिहर मजदूर, ट्रांसपोर्ट के काम में लगे मजदूर, घरेलू सहायक यानी काम वाली बाइयाँ, छोटे ट्रेडर्स कुछ प्रोफेशनल आदि यह सब अनौपचारिक क्षेत्र में आते हैं। सरकार द्वारा पेश 2018-19 के आर्थिक सर्वे में कहा गया है कि दस में से नौ भारतीय कामगार अनौपचारिक क्षेत्र में काम करते है। यानी औपचारिक क्षेत्र के मुकाबले में अनौपचारिक क्षेत्र कहीं ज्यादा प्रासंगिक और अहम है।

हालाँकि, हमें यह भी पता नहीं है कि अनौपचारिक अर्थव्यवस्था का आकार क्या है। इसकी प्रकृति के अनुसार कर के भुगतान या विनियमित होने के मामले में राज्य के साथ इसका गहरा जुड़ाव नहीं है और इसलिए सरकार को इसके अस्तित्व का पता नहीं है। कुछ छोटे व्यवसाय बड़े व्यवसायों के लिए आपूर्तिकर्ताओं के रूप में काम करते हैं, जो औपचारिक हैं और टैक्स भरते हैं।

सूरत के टेक्स्टाइल उद्योग से जुड़े 'मधुसूदन ग्रुप ऑफ इन्डस्ट्रीज' के भागीदार श्री गिरधर मूंदड़ा ने लाकडाउन के असर की चर्चा करते हुए कहा कि लाकडाउन के दौरान सभी फैक्ट्रियाँ बन्द हैं। काफी मजदूरों को यहीं रोक रखा है, उनकी सभी व्यवस्थाएँ कर दी गई हैं, फिर भी अनिश्चितता के माहौल के कारण लगभग 40 प्रतिशत मजदूर वापस अपने-अपने गाँव चले गए हैं। यह पूछा जाने पर कि जब फैक्ट्रियाँ चालू करेंगे तब तो उन मजदूरों की आवश्यकता होगी। उन्होंने कहा कि पूरी क्षमता से उत्पादन के लिए सभी मजदूरों की आवश्यकता होगी। लेकिन इतने अकेले से उद्योग नहीं चल सकता। उत्पादन का नियमित चक्र चले इसके लिए और भी कई संकट हैं जैसे उत्पादित माल की खपत। उसके लिए थोक व्यापारी तथा स्टाकिस्ट पूर्ववत तौर से जब माल खरीदेंगे तथा माल का परिवहन होकर उनके गोदामों तक पहुँचेगा तभी कंपनी को भुगतान मिलेगा। कच्चे माल से लेकर फैक्ट्री के अन्य सभी खर्चों के लिए पैसा चाहिए। अभी धन का प्रवाह रुक गया है। उपभोक्ता खुदरा व्यापारी से माल लेता है। खुदरा व्यापारी को स्टाकिस्ट या थोक व्यापारी माल का प्रदाय करता है। कपड़े के व्यापार का बड़ा सीजन

शादी ब्याह, लग्न सरा के अवसरों पर होता है। लाकडाउन से वह माँग का वह सिलसिला ठंडा पड़ गया है ।फिलहाल तो पूरी चेन ही गड़बड़ हो गई है। बंद पड़े उद्योगों का पुन: प्रारंभ हो तथा वे कम से कम इतनी क्षमता से तो चले ताकि 'ब्रेक ईवन प्वाइंट' (सम विच्छेद बिंदु अर्थात न लाभ और न हानि) की स्थिति बनी रहे। उद्योग प्रारंभ करने में 'ब्रेक ईवन प्वाइंट' तक पहुँचने में कुछ समय अवश्य लगेगा।

शादी ब्याह, लग्न सरा समाज की एक ऐसी व्यवस्था रही है जिसके इवेंट मैनेजमेंट से कई लोगों की रोजी रोटी जुड़ी होती है और ये सारे लोग अनौपचारिक क्षेत्र के ही होते हैं। जैसे मैरिज गार्डन, पंडाल व्यवस्था, केटरिंग आदि तथा सभी अनुषांगिक व्यवस्थाओं से जुड़े लोगों को इन अवसरों पर रोजगार मिल जाता था वह सब लाकडाउन में समाप्त हो गया। सिविल इंजीनियरिंग से जुड़े विनिर्माण में लगे मजदूर बेरोजगार हो गए, क्योंकि सरकारी निर्माण ठेकों का काम बंद है। रेरा के हाउसिंग प्रोजेक्ट या निजी तौर पर मकान बनवाने वाले ठेकेदारों के पास भी काम नहीं है। जिन उद्यमियों ने पहले रेरा के तहत हाउसिंग प्रोजेक्ट पूरे कर लिए थे उनके मकान बिक नहीं रहे हैं।

ठंडी पड़ी अर्थव्यवस्था को वापस अपने पूर्व रूप में लाना एकदम से संभव नहीं है। इसे यों समझें कि एंजिन जब तक चालू रहता है, कोई दिक्कत नहीं आती। लेकिन यदि एंजिन बंद कर दिया जाए और वह ठंडा हो जाए तो पुन: चालू करना बहुत दिक्कत का होता है और जब तक वह गर्म नहीं होता तब तक चालू नहीं होता। जैसे ठंड के दिनों में सुबह सुबह आपके वाहन एकदम स्टार्ट नहीं होते, कुछ दिक्कत करते हैं तथा प्रयास करते रहने पर गर्म होते हैं तब स्टार्ट हो पाते हैं। अर्थव्यवस्था का एंजिन लाकडाउन में ठंडा हो गया है। उसके चालू होने में कुछ समय तो लगेगा लेकिन बढ़िया चालू होगा।

विश्वबैंक के ताजा अनुमान के अनुसार भारत की वृद्धि दर 2020 में 1.5 से 2.8 प्रतिशत के बीच रह सकती है। इसी प्रकार, आईएमएफ ने जीडीपी (सकल घरेलू उत्पाद) वृद्धि दर 1.9 प्रतिशत रहने का अनुमान जताया है। महामारी और उसकी रोकथाम के लिए देशव्यापी बंद के कारण एमसएमई (सूक्ष्म, लघु एवं मझोले उद्यम), होटल, नागर विमानन, कृषि और संबद्ध क्षेत्रों पर व्यापक प्रभाव पड़ा है।

इस समय प्रवासी मजदूरों की समस्या भी सिर चढ़कर बोल रही है या तो जिस कारखाने में काम करते थे वह बंद हो गया और मालिक ने मदद नहीं की, या जो फुटकर काम करते थे वह काम मिलना भी बंद हो गया। मुंबई, महाराष्ट्र और गुजरात में उत्तरप्रदेश तथा बिहार के मजदूर ज्यादा हैं इनके अलावा मध्यप्रदेश एवं राजस्थान के भी मजदूर हैं। मुम्बई में तो टैक्सी ड्राइवरों में उत्तरप्रदेश तथा बिहार के लोगों की संख्या अच्छी खासी है। लाकडाउन के दौरान काम ठप होने से वे रोटी के जुगाड़ में असफल हो रहे हैं। महानगरों से

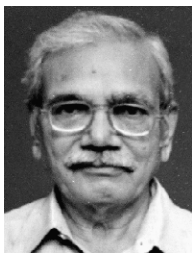

अभियांत्रिकी स्नातक श्री राजेन्द्र हरदेनिया पत्रकार और किसान हैं। मध्यप्रदेश में सामाजिक सरोकारों की पत्रकारिता के लिए सुपरिचित पत्रकार हैं। नवचेतना उच्चतर माध्यमिक विद्यालय पिपरिया और किशोर भारती स्वैच्छिक संगठन के माध्यम से उत्कृष्ट शिक्षा और समग्र ग्रामीण विकास के लिए कार्यरत हैं। प्रमुख हिन्दी दैनिक 'नईदुनिया' के तीस वर्ष तक संवाददाता रहे। सन 2003 में क्योटो, जापान में आयोजित वर्ल्ड वाटर फोरम में 'जल जागरूकता एवं जल पत्रकारिता' पर व्याख्यान के लिए आमंत्रित किए गए। प्राणायाम की विशेष विधि में दक्ष श्री राजेन्द्र हरदेनिया सन 2000 से लगातार योग विधा के प्रशिक्षण एवं अभ्यास शिविर चला रहे हैं।

उनका मोह भंग हो गया है। अपने मूल स्थान अपने गाँव की ओर लौटते हुए कई सौ किलोमीटर का फासला तय करने का संकल्प लिए पुरुषों, महिलाओं बच्चों की सड़कों पर चलती हुई कतारें हैं, कहीं कहीं सड़क दुर्घटना में दर्दनाक मौतों के समाचार भी आ रहे हैं। जो मुंबई में आटो रिक्शा चलाते थे वे उसे आटो रिक्शा से अपने परिवार को लेकर मुंबई से बिहार के सफर पर निकल पड़े। कुछ ने साइकिलें खरीद लीं और वही साइकिलें सात आठ सौ किलोमीटर के लिए उपयुक्त वाहन हो गए। जाने के लिए गाड़ी या बस मिलने की उम्मीद में रेल्वे स्टेशनों या बस अड्डों पर जमा भीड़ के भी दृश्य हैं। टीवी स्क्रीन पर ऐसे ही कई संवेदनशील दृश्य दिख रहे हैं, जो प्रवासी मजदूरों की बेबसी बयान करते हुए मन को कचोटते हैं। यद्यपि सरकार ने उन्हें घर पहुँचाने के लिए व्यवस्थाएँ की हैं। श्रमिक एक्सप्रेस ट्रेनें चलाई गई हैं। बसों की व्यवस्था भी राज्य सरकारें कर रही हैं। ये प्रवासी मजदूर जब अपने गाँव, अपने घर पहुँचेंगे तब वहाँ भी रोजी रोटी का संकट होगा। इसलिए सरकार ने मनरेगा के लिए अतिरिक्त राशि आवंटित की है ताकि इन्हें वहाँ काम मिल सके।

देश के लाखों मजदूरों का प्रवास आज जिस रूप में सामने आया है, कुछ बुनियादी सवाल खड़े करता है। आजादी के बाद देश ने जो विकास की दिशा तय की थी, वह देश की बड़ी आबादी को इतना आर्थिक स्थायित्व प्रदान नहीं कर सकी जो महामारी जैसी विपदा को झेल सके। एक झटके में कईयों के घरोंदे उजड़ गए। हमने संविधान में सबको समान अवसर देने की बात कही, लेकिन ये दृश्य बताते हैं कि सबको विकास के समान अवसर कहाँ मिल पाए। जिन मूल राज्यों से ये मजदूर अलग अलग राज्यों में रोजी रोटी कमाने गए, क्या कारण है कि वे मूल राज्य अपने यहाँ ऐसा ढाँचा खड़ा नहीं कर पाए जो उन बेरोजगारों को अपने ही राज्य में रोजगार मुहैया करा पाते। मुंबई के मूल महाराष्ट्रीयन इस बात से आशंकित रहे हैं कि दूसरे प्रदेशों के लोग आकर उनके रोजगार के अवसर

छीन रहे हैं। कोरोना की इस आपदा ने इस दिशा में एक नये ढंग से सोचने का अवसर दिया है।

नये ढंग का सोच तो हर क्षेत्र में विकसित होना चाहिए, और इस संदर्भ में महात्मा गांधी ज्यादा प्रासंगिक हो गए हैं। इस कोरोना काल के लाकडाउन में कितनी ही चीजों के बिना आराम की जिंदगी बिताई है। इस दौर में बहुत-सी दिखावे की चीजें अपने आप हम से छूट गई हैं। इस दौर में वाहनों का कम से कम इस्तेमाल हुआ जिससे कार्बन का उत्सर्जन घट गया। क्या आगे ऐसी शैली विकसित नहीं की जा सकती कि वाहनों का कम इस्तेमाल करें। निजी साधनों के बजाय यदि पब्लिक ट्रांसपोर्ट को यदि सशक्त किया जाए तो कार्बन उत्सर्जन भविष्य में भी घट सकता है। घर से काम करने की संस्कृति भी यदि विकसित की जाए, जिसको अभी कुछ कार्यालयों ने प्रायोगिक तौर पर अपनाया, तो उसके भी काफी लाभ हो सकते हैं या आवश्यकतानुसार किसी कार्यालय में आधे कर्मचारी सप्ताह के पहले, तीसरे और पाँचवे दिन आएँ तथा शेष आधे कर्मचारी दूसरे, चौथे और छठवें दिन आएँ। इससे कार्यालयों में सोशल डिस्टेंसिंग बनी रहेगी तथा सड़क पर आधे वाहन ही चलेंगे। कुल मिलाकर कोरोना काल में जो कुछ सीखा उसके सबक आगे भी अमल में लाने का विचार करना चाहिए। ऐसा लगता है कि कोरोना तो अभी टिकेगा। उससे बचना भी है और कुशलतापूर्वक आगे भी बढ़ना है।

तू जिंदा है तो जिंदगी की जीत में यकीन कर,
अगर कहीं है स्वर्ग तो उतार ला जमीन पर।

(Email : rajhardenia@gmail.com)

लाकडाउन : कुछ यक्ष प्रश्न

■ कृष्ण गोपाल व्यास

सारा संसार, इन दिनों, कोरोना की महामारी से आक्रान्त है। महामारी के विस्तार को रोकने के लिए सभी देश चिकित्सीय व्यवस्थाओं के अलावा लाकडाउन और सोशल-डिस्टेंसिंग जैसी सावधानियों को अपना रहे हैं। उल्लेखनीय है कि लाकडाउन के कारण अधिकांश विकास कार्य पटरी से उतर गए हैं। उत्पादों की माँग घट गई है। अनेक कल-कारखाने बन्द हो गए हैं। उत्पादन और व्यापारिक गतिविधियाँ लगभग ठप है। आजीविका संकट के कारण मजदूरों का अपने-अपने गाँवों की ओर रिवर्स-पलायन हो रहा है। यह भी सही है कि मौजूदा परिस्थितियों में विकास की नीतियों और योजनाओं पर प्रामाणिकता सिद्ध करने का दबाव है। यह अवसर जनप्रतिनिधियों, योजना प्रबन्धकों तथा विशेषज्ञों के आत्मचिन्तन का भी दौर है। उन पर, मौजूदा विकास के ढाँचे के कमजोर हिस्सों को सुधारने और इतिहास से सबक ले, भविष्य के लिए सही मार्ग चुनने की जिम्मेदारी है। इस दौर में समावेशी विकास के ऐसे माडल की नींव रखी जाना चाहिए जो सर्व जन हिताय हो। सन्तुलित, टिकाऊ और निरापद हो, जिसमें लाकडाउन जैसे संकट से निपटने की सामर्थ्य हो और जिसका डेमेज-मेनेजमेंट आसान हो। सेहत और जी.डी.पी. के लिए कम नुकसानप्रद हो। लाकडाउन के दौरान एक ओर यदि बहुत-सी खामियों पर से परदा उठा है तो दूसरी ओर देश की एकजुटता भी सामने आई है। कतिपय पर्यावरणी समस्याओं के समाधानों को लेकर दिशाबोध के स्पष्ट संकेत भी मिले हैं। इन समस्याओं और उन समस्याओं के असर से उपजे सवालों और प्रति-सवालों के बीच जो सबसे जरूरी संकेत सामने आ

रहे हैं, वे इंगित करते हैं कि लाकडाउन के प्रभावों को सीमित दायरे में रखकर नहीं देखा या समझा जाना चाहिए। उन्हें देखने का नजरिया भी केवल आर्थिक समस्या, राजस्व प्राप्ति या सट्टा बाजार का उतार-चढ़ाव नहीं होना चाहिए। हर हाल में उन्हें किसी एक सेक्टर के हानि-लाभ या कारपोरेट घरानों के हानि-लाभ से भी जोड़कर नहीं देखा जाना चाहिए। हकीकत में उनका सम्बन्ध बहुसंख्य समाज से है। बहुसंख्य समाज के योग-क्षेम से है। यदि देखना ही है तो उन्हें बहुसंख्य समाज की आजीविका, पर्यावरणी हित और अहित, सामाजिक सुरक्षा तथा देश को सम्पन्न तथा आत्मनिर्भर बनाने के नजरिए से देखा, परखा और समझा जाना चाहिए। हमारी परिष्कृत नीतियों और कार्यक्रमों की दिशा कारपोरेट जगत की हित साधना नहीं अपितु समाज का शुभ-लाभ होना चाहिए। इलाज की व्यवस्था का आधार अमीरी और गरीबी नहीं होना चाहिए।

लाकडाउन के बहुआयामी असर का अध्ययन किया जाना चाहिए। व्यापक अध्ययनों द्वारा

अलग-अलग सेक्टरों की खामियों के उत्तर खोजे जाना चाहिए। इन खामियों को देश की बहुसंख्य आबादी ने पलायन जनित विवशता के रूप में भोगा है। उल्लेखनीय है कि मीडिया ने उन खामियों को मय प्रमाण के, देश के विचारकों, योजनाकारों तथा प्रबन्धकों के सामने रखा है। यह अवसर मौजूदा विकास के माडल की परीक्षा का भी है क्योंकि ऐसे ही अवसरों पर उद्योग-धंधों, पी.पी.पी. माडल और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के फायदों और कायदों को समाज और देश के योग-क्षेम की कसौटी पर रखकर परखा जा सकता है। ऐसे ही अवसरों पर स्वास्थ्य सेवा उपलब्ध कराने वाले चिकित्सकों के प्रति व्यवस्था के नजरिए और बीमारों के प्रति व्यवस्था की जिम्मेदारी को परखा जा सकता है। इन हकीकतों के अलावा यह अवसर कुदरती संसाधनों के सन्तुलित दोहन की लक्ष्मण रेखा की अनदेखी कर विकास करने के परिणाम भोगने का भी है।

मौजूदा लेख, लाकडाउन पर ध्यान केन्द्रित करने का प्रयास है। उसके समूचे कैनवास को प्रस्तुत करने की कोशिश नहीं। इस छोटे से आलेख में वह हो भी नहीं सकता। इसे ध्यान में रख यह प्रयास कुछ मोटी-मोटी बातों पर ध्यान खींचने की सामान्य कोशिश ही है। लेखक को लगता है कि एक ओर यदि लाकडाउन ने सामाजिक सुरक्षा से जुड़े अनेक सवालों को रेखांकित किया है तो दूसरी ओर स्थायी आजीविका के लिए सुरक्षित सेक्टरों को इंगित किया है। उदाहरण के लिए परम्परागत खेती में आजीविका की छुपी बेहतर संभावनाओं को उजागर किया है। प्राकृतिक संसाधनों के गांधीवादी उपयोग की मदद से अनेक प्रश्नों के समाधान के लिए मार्गदर्शन भी दिया है। इसी कारण इस आलेख में लेखक ने पलायन और पर्यावरण के मुद्दे को ही छुआ है। सबसे पहले बात दिहाड़ी और अर्द्ध-कुशल मजदूरों के पलायन और रिवर्स-पलायन की।

भारत की परम्परागत खेती में आत्मनिर्भरता और रोजगार प्रदान करने की अदभुत क्षमता थी। पिछले लगभग 5000 साल से ग्रामीण अर्थव्यवस्था का आधार, स्थानीय पर्यावरण से तालमेल बिठाती और उसको सम्मान देती परम्परागत खेती ही थी। इसी कारण भारत की लगभग 70 प्रतिशत आबादी को खेती और उससे जुड़े कामों से स्थायी आजीविका मिली थी। यह पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलने वाली व्यवस्था भी थी। इसी कारण, समाज की नजर में खेती को सर्वोत्तम व्यवसाय माना जाता था।

आजादी के बाद देश में खेती के मशीनीकरण का दौर प्रारंभ हुआ। उसके कारण खेती के तौर-तरीकों में तीन मुख्य बदलाव आए। पहले बदलाव के कारण खेती के काम में आने वाले छोटे-छोटे उपकरणों तथा यंत्रों का उपयोग घटा। दूसरे बदलाव के कारण खेती के काम में आने वाला पशुधन चलन से बाहर हुआ। तीसरे बदलाव के कारण परम्परागत खेती जो पूरी तरह प्राकृतिक और रसायनमुक्त थी, को बाजार के दबाव में रासायनिक और मेकेनाइज्ड खेती में बदल दिया। इस बदलाव ने खेतिहर मजदूरों और ग्रामीण हुनरमन्दों को अप्रासंगिक बना दिया। खेती बाजार पर निर्भर होने लगी। इन बदलावों के कारण खेती की लागत में इजाफा होने लगा। बचत का ग्राफ हासिए पर आ गया। किसान के लिए परिणाम घातक हुआ। कुछ के लिए आत्महत्या नियति बन गई। ग्रामीण अर्थव्यवस्था चरमराने लगी। खेतिहर मजदूरों की बेरोजगारी बढ़ने लगी। इसी बदलाव के कारण, काम की खोज में, गाँवों से अकुशल और अर्द्ध-कुशल लोगों का नगरों की ओर पलायन प्रारंभ हुआ। अनजान परिवेश और विपरीत परिस्थितियों में रहना सीखा पर लाकडाउन ने उनका जमा-जमाया खेल बिगाड़ दिया। आजीविका को मानो ग्रहण लग गया। पर कृषि क्षेत्र के इस बदलाव ने बाजार को बुलन्दियों पर पहुँचा दिया। किसान की आय का प्रवाह नगरों की ओर हो गया।

मीडिया रिपोर्टिंग से पता चलता है कि लाकडाउन के कारण महानगरों में चल रहे अनेक

विकास कार्य अटक गए हैं। बहुत से कारखानों का उत्पादन बन्द हो गया। बहुत से अर्द्ध-कुशल और दिहाड़ी मजदूर बेरोजगार हो गए हैं। आमदनी खत्म होने के कारण उनका रिवर्स-पलायन प्रारंभ हो रहा है। इस रिवर्स-पलायन की कहानियाँ देश की आत्मा को झझकोरने वाली कहानियाँ हैं। मजदूरों के रिवर्स-पलायन की जड़ में जो डर है, वह डर ही, उन्हें बिना किसी साधन या सुविधा के, कानूनी पाबन्दियों को तोड़कर, अपने परिवार के साथ, सैकड़ों किलोमीटर की यात्रा कर, अपनी जड़ों के पास वापस लौटने की ताकत दे रहा है। संभवत: इसी ताकत के कारण बुन्देलखण्ड लौटे अनेक मजदूरों का कहना था कि यदि उन्हें स्थानीय स्तर पर रोजगार मिल सके तो वे कभी भी घर छोड़कर, बाहर नहीं जाना चाहेंगे। मौजूदा रिवर्स-पलायन, किसी हद तक, मृगतृष्णा या मृगमरीचिका से मोहभंग का मामला है। पलायनकर्ता गाँवों में रोजगार के कम होते अवसरों के कारण अलग-अलग बरसों में नगरीय इलाकों में रोजगार की तलाश में गए थे। संभव है जाते समय उनके मन में गाँव छोड़ने के साथ-साथ कोई सपना या सम्बल रहा हो पर लाकडाउन की हकीकत ने उस सपने और सम्बल को तार-तार कर दिया है। रिवर्स-पलायन की आँधी को देखकर लग रहा है कि एक बार फिर, उनका मोहभंग हुआ है। संभवत: उनको नगरीय रोजगार में स्थायित्व तथा नगरीय जीवन में सामाजिक समरसता का अभाव नजर आ रहा है। यह नगरीय और ग्रामीण परिस्थितियों की तुलना का भी अवसर है। उन्हें लग रहा है कि नगरों में तो उनके और मालिक के बीच केवल प्रोफेशनल सम्बन्ध हैं। लाकडाउन के कठिन दिनों ने उन सम्बन्धों की कलई खोल दी है। रिवर्स-पलायन ने दिखाया है कि वह सम्बन्ध विश्वसनीय नहीं है। रिवर्स-पलायन के और भी कारण हो सकते हैं लेकिन मोट तौर पर लगता है कि यह मुख्यत: आजीविका का ही संकट है। इस संकट या मोहभंग को उस हर मजदूर ने भोगा है जो वायदों और मृगतृष्णा के चलते, जाने-अनजाने में नगरों में भविष्य खोजने चला आया था। लाकडाउन की त्रासदी को भोगने के बाद अब अपनी जड़ों के पास लौट रहा है। आश्चर्यजनक है कि लौटने वालों में देश के हर ग्रामीण अंचल के अशिक्षित, अर्द्ध-शिक्षित तथा अर्द्ध-कुशल लोग हैं। आई.टी. के फील्ड के लोग नहीं। यदि हैं तो उनकी संख्या कम ही है।

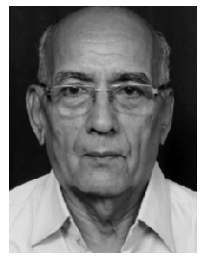

श्री कृष्ण गोपाल व्यास (एम. एस सी. - भू-विज्ञान) ने मध्यप्रदेश सरकार द्वारा संचालित 'पानी रोको अभियान' की मूल अवधारणा (जल स्वावलंबन) को विकसित किया। समाचार पत्रों-पत्रिकाओं, संगोष्ठियों, कार्यशालाओं के माध्यम से समाज में जल चेतना के प्रसार में सक्रिय सहभागिता कर रहे हैं। जनसंचार माध्यमों में जल विज्ञानी के रूप में समादृत। लोक संस्कृति में जल विज्ञान और प्रकृति की वैज्ञानिकता परखने के मिशन में संलग्न। जल विज्ञान पर मौलिक और गवेषणापूर्ण पुस्तक लिखने में तल्लीन।

यह सही है कि भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था के पुराने माडल को यथावत स्वीकार या लागू करने में अनेक कठिनाइयाँ हैं। उदाहरण के लिए कठिनाइयाँ हैं - ग्रामीण आबादी, प्रति व्यक्ति भूमि की उपलब्धता, खेती के कुदरती संकट और सबके ऊपर शुभ लाभ नहीं देने वाला बाजार और सरकार तथा कृषि वैज्ञानिकों का नजरिया। लेकिन खेती के पुराने माडल में, आधुनिक समय के अनेक यक्ष प्रश्नों के उत्तर छुपे हैं। पुराने समय में बुन्देलखण्ड की राखड और बेनूर मिट्टी को पानी उपलब्ध कराकर तत्कालीन राजाओं ने किसानों को इतना सक्षम तो अवश्य ही बनाया था कि वे पलायन नहीं करें। खडीन संरचना ने राजस्थान के पालीवाल ब्राह्मणों की रबी की खेती को पुख्ता आधार प्रदान

किया था। मध्यप्रदेश के नर्मदा कछार के पश्चिमी जबलपुर, पूर्वी नरसिंहपुर और दमोह के कुछ हिस्सों में हवेली खेती की मदद ने उन्हें पुख्ता आर्थिक आधार प्रदान किया था। उसी व्यवस्था ने उन लोगों को स्थायी रोजगार उपलब्ध कराया था जो आज पलायन को मजबूर हैं। कारण साफ है, सारे प्रयासों और वायदों के बावजूद हर खेत को पानी अनुपलब्ध है। खेती लगातार महँगी हो रही है। शुभ-लाभ का लाभ बाजार में गिरवी रखा है। दिवालिया होता किसान किस को रोजगार देगा? वह खुद असहाय है। गौरतलब है कि उसकी खेती के शुभ-लाभ को देखना बाजार का दायित्व नहीं है। यह दायित्व है देश का। देश के विचारकों, योजनाकारों तथा प्रबन्धकों का। सरकारों का। लाकडाउन ने उन सबसे सवाल पूछा है। हमें याद रखना चाहिए कि हर खेत को पानी की उपलब्धता को सुनिश्चित कर उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। जैविक खेती और उत्पादों को उचित मूल्य देकर ग्रामीण अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाया जा सकता है। बहुत से लोगों का मानना है कि कृषि सेक्टर में पलायन करने वाले लगभग 75 प्रतिशत मजदूरों को रोजगार उपलब्ध कराने की क्षमता है। यह क्षमता फैक्टरियों, कल-करखानों या उद्योगों में नहीं है।

प्रश्न है कि क्या हमारी मौजूदा ग्रामीण अर्थव्यवस्था, मौजूदा समय में घर वापस आए लोगों को सामाजिक सुरक्षा तथा रोजगार दे सकेगी? गौरतलब है कि मौजूदा रिवर्स-पलायन करता मजदूर ग्रामीण अर्थव्यवस्था में, उसी उम्मीद को खोज रहा है। यह गांधीवादी सोच है। यही गांधीवादी सोच ही ग्रामीण अर्थव्यवस्था का वह सुरक्षा कवच है जिसने पिछले 5000 सालों तक विपत्ति के दिनों में खेतिहर मजदूर को भूखे मरने तथा बिखरने से बचाकर एकजुट रखा था। उसकी धार कुन्द की गई है। वह अभी जिन्दा है।

प्रश्न है कि क्या यह रिवर्स-पलायन अस्थायी है? क्या नगरीय रोजगार की चकाचौंध खेतिहर मजदूरों को पुनः सम्मोहित कर नगरों की ओर खींच लाएगी? यह हमारी रीति-नीति और लाकडाउन के बाद अपनाए परिष्कृत माडल पर निर्भर करेगा। अब कुछ चर्चा पर्यावरण की।

लाकडाउन की अल्प अवधि ने पर्यावरण के क्षेत्र में वह चमत्कार किया है जिसका सपना समाज 1986 से देख रहा था। गंगा एक्शन प्लान। गंगा की सफाई। यमुना की सफाई। अविरल गंगा। निर्मल गंगा। और न जाने क्या क्या। वेसे तो सफाई का यह संकेत पिछले कुम्भ के अवसर पर प्रयागराज में दिखा था पर उस समय समाज और मीडिया के साथ-साथ देश के वैज्ञानिकों, विचारकों, योजनाकारों तथा प्रबन्धकों से उसकी अनदेखी हुई। खैर, बीत गई सो बात गई। मौजूदा लाकडाउन में कारखानों के बन्द होने के कारण केवल उनके अपशिष्ट और रसायनों के नदियों में नहीं मिलने मात्र से गंगा, यमुना, नर्मदा, कावेरी जैसी विशाल नदियों की सेहत में सुधार दिख रहा है। उनकी बायोडायवर्सिटी, उनकी अविरलता मानो सब कुछ लौटते दिख रहा है। इसके अलावा, देश की हवा की गुणवत्ता में सुधार दिख रहा है। हिमालय की चोटियों का दिखना प्रारंभ हो गया है। पशु-पक्षियों की आवाज सुनाई देने लगी है। यह चिमनियों और वाहनों के धुओं के कम उत्सर्जन का परिणाम है। दो सप्ताह में हुआ यह सुधार दर्शाता है कि देश की हवा और पानी को बेहतर बनाया जा सकता है। लक्ष्मण रेखा खींचने की आवश्यकता है। उम्मीद है कोई न कोई भागीरथ देश के वैज्ञानिकों, विचारकों, योजनाकारों तथा प्रबन्धकों को इस बदलाव से रू-ब-रू करने की कोशिश अवश्य करेगा। मामला सही दिशा में काम करने का है। प्रोफेशनल इंटीग्रिटी का है। मामला, समाज को ही नहीं वरन अपनी आगामी पीढ़ियों को गुमराह होने से बचाने के लिए लक्ष्मणरेखा खींचकर अपनी जिम्मेदारी पूरा करने की है। जिम्मेदारी लाकडाउन से उपजे यक्ष प्रश्नों के उत्तर देने की है। उससे बड़ा भी प्रश्न है क्या उत्तर मिलेगा?

(Email : kgvyas_jbp@rediffmail.com)

प्रकृति का शुक्ल पक्ष और मनुष्य का कृष्ण पक्ष

■ डा. ऋतु पाण्डेय शर्मा

संपूर्ण विश्व कोरोना महामारी की चपेट में है। एक अदृश्य विषाणु की शक्ति के आगे सर्वशक्ति सम्पन्न मानव ने घुटने टेक दिए हैं। यह मात्र महामारी नहीं है बल्कि एक अवसर है प्रकृति और मानव के अंतर्संबंध को समझने और अवलोकन करने का। इस महाघटना के भीतर छुपे संकेतों को बूझने और मनन करने का। एक ओर जहाँ दुनिया के सभी देश अपनी क्षमता और संसाधनों से इस लड़ाई को जीतने के लिए भरसक प्रयास कर रहे हैं और दूसरी तरफ मानव मूल्यों से लबरेज जनमानस एक दूसरे की सहायता करने में लगा हुआ है। एक बार फिर भारतीय संस्कृति और जीवन पद्धति पर चर्चा चल पड़ी है। एक ओर लाकडाउन के कारण काम धंधे चौपट हो गए हैं तो दूसरी ओर होटल, मॉल और रेस्तरां खाली पड़े हैं। सिनेमाघरों की जगह अब घरों में ही कैरम और लूडो जैसे खेलों का दौर वापस आ गया है। अब सड़कों पर दौड़ते वाहनों के हॉर्न की जगह पक्षियों की चहचहाट साफ सुनी जा सकती है। आसमान भी साफ है। प्रदूषण कम हो गया है। इस परिवर्तन ने कई अर्थों में नवीन दृष्टि दी है।

एक तरफ कोरोना संकट ने लोगों को शारीरिक दूरी बनाने पर मजबूर किया है वहीं दूसरी ओर मानवीय संवेदनाओं के श्रेष्ठ आदर्श दिखाई दे रहे हैं। जहाँ भारतीय समाज के नासूर धर्मान्धता और अंधविश्वास उभर कर सामने आए हैं तो वहीं लोगों ने मानवीय धर्म की भी मिसाल कायम की है। एक सर्वे के अनुसार सत्तर प्रतिशत भारतीय अपने परिवार और भविष्य को लेकर भयभीत हैं। मनोविज्ञान कहता है कि मनुष्य के भय की जड़ मृत्यु है। सारे डर इस एक वजह से ही पैदा होते हैं। लेकिन इस समय कोरोना का डर कुछ हद तक काल्पनिक है और स्वयं का ही रचा हुआ है। इस काल्पनिक भय के कारण मानसिक रोगों में बढ़ोतरी हुई है। लोग चौबीस घंटे अपने घरों में हैं और घरेलू हिंसा के प्रकरण भी सामने आ रहे हैं। यह संकेत देता है कि पारिवारिक जीवन में कहीं न कहीं छेद हैं जो मुसीबत पड़ने पर दिखने लगे हैं। आज शारीरिक दूरी के साथ-साथ तकनीकी की वजह से भावनात्मक मेल-मिलाप बढ़ा है। आज फिर एक बार बालकनी और छत वार्तालाप तथा सुख-दुःख साझा करने के विकल्प के रूप में अपना लिए गए हैं। कामकाज के तौर-तरीकों में भी बदलाव आया है। कुल मिलाकर मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों को समझने का अवसर है। मानव सभ्यता ने विकास के कीर्तिमान स्थापित किए हैं। शहरीकरण, औद्योगिकीकरण और तकनीकी ने साधन-सुविधाओं को बढ़ाया है लेकिन इस विकास यात्रा में प्रकृति का अंधाधुंध दोहन किया गया है। धरती पर जनसंख्या का बोझ तो बढ़ता गया लेकिन सीमित संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग करने के उपाय नहीं तलाशे गए और परिणाम सामने है। मनुष्य कितनी ही प्रगति कर ले लेकिन प्रकृति पर विजय नहीं पा सकता। प्रकृति स्वयंभू है और संतुलन उसका अटल स्वभाव है। प्रकृति पर राज करने की भावना की जगह समायोजन और सह-अस्तित्व के बारे में मंथन आवश्यक है। हमारे रहन-सहन से कितना नुकसान हुआ है और कैसे सुधार किया जा सकता है इस पर विचार करना होगा। हमें जल, जमीन, वायु और जीवन का मूल्य समझना का अवसर इस कोरोना संकट ने दिया है। प्राकृतिक तरीके से जीने और सहजता को अपनाने का समय है।

हिन्दुओं ने जीने के लिए बड़े ही वैज्ञानिक तौर तरीके दिए जो हमारी संस्कृति की धरोहर हैं। चाहे

वह शाकाहार हो जिसे 'अन्नं ब्रह्म' कहा गया। भारतीय दर्शन ने जीवन के चार ध्येय – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नियत किए जो कि आदर्श जीवन के लिए अपरिहार्य हैं। यहाँ तक कि पेड़-पौधों को भी पूजनीय माना गया क्योंकि ये प्राण वायु के स्रोत हैं। बीमारी में काम आने वाली जड़ी-बूटियाँ और औषधियाँ इन्हीं की देन है। वैदिक काल में बिना प्रयोगशाला के औषधीय गुणों को जाना गया। रामायण के लंकाकाण्ड में एक प्रसंग है जब हनुमान घायल लक्ष्मण के लिए हिमालय पर्वत से संजीवनी बूटी के लिए पर्वत का एक भाग ही उठा लाए। लेकिन वैद्य ने बूटी के लिए पूरी वनस्पति नष्ट नहीं की बल्कि कृतज्ञता के भाव से प्रार्थना कर स्वयं पौधे से ही विशेष भाग माँगा। इसीलिए हिन्दुओं के लिए वृक्ष और वनस्पति पूजनीय हैं। हमारे यहाँ घरों के बाहर ही शौचालयों का निर्माण किया जाता था जो संक्रमणों से दूर रखने में सहायक था। हवादार और स्वाभाविक रौशनी वाले घर बनाए जाते थे जिससे स्वास्थ्य ठीक रहता था। बाहर से वापस घर आने पहले ही बाहर हाथ-पैर धोने का आग्रह किया जाता जिससे बाहर की गंदगी बाहर ही रह जाए, भीतर न आ सके। भोजन में भी पोषण और रोग प्रतिरोध तंत्र मजबूत करने के लिए विभिन्न प्रकार के मसाले और सामग्रियों का उपयोग किया जाता रहा है। मोटे अनाज, दही-छाछ, वाजीकारक व्यंजनों से भारतीय रसोई सजी-धजी रही है। लेकिन आज पाश्चात्य भोजन अपनाने के कारण कमजोर स्वास्थ्य का खामियाजा भुगतना पड़ा है। यहाँ तक कि भोजन पकाने के लिए लोहे, पीतल, तांबे या मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग भी बड़ा ही वैज्ञानिक है। अब इस सनातन धर्म की ओर सारे संसार की दृष्टि पुन: आकर टिक गई है।

'जान है तो जहान' है की उक्ति को चरितार्थ करती आज की परिस्थितियों में जीवन मंत्र छुपा है। उदारीकरण के इस दौर में भागम-भाग मची हुई थी जिस पर एक ब्रेक लग गया है। इस महाघटना ने शरीर के साथ-साथ मन को भी जागरूक करने का महान काम किया है। अभी तक स्वच्छता के प्रति घोर लापरवाही और निठल्लेपन का स्वभाव मनुष्य का रहा है जिसका परिणाम हम देख रहे हैं। यह स्वभाव बदला है इसकी वजह जान की परवाह है। हाथ धोने से लेकर साफ सफाई के प्रति जागरूकता की अहमियत समझी जा रही है। खासकर सार्वजनिक जगहों पर। यह दौर मुश्किल जरूर है लेकिन इसने अनेक संभावनाओं के दरवाजे खोल दिये हैं। अब घर लौटने की पुकार है। जड़ों की ओर मुड़ जाने की दरकार है।

मनुष्य के अहंकार को नतमस्तक कर निसर्ग ने इस विकृति को सुधारने के बहाने हमें अपने क्रियाकलापों पर पुनर्विचार करने का अवसर दिया है। जिसे न समझना एक बहुत बड़ी मूढ़ता हो सकती है। इस वैतरणी को पार कर हम संवेदनशील इंसान के रूप में एक दूसरे से मिलेंगे।

(Email : editorbeingmindful@gmail.com)

डा. ऋतु पाण्डेय शर्मा मासिक पत्रिका 'बीईंग माइंडफुल' की प्रधान संपादक एवं प्रकाशक हैं। आपने बरकतउल्ला विश्वविद्यालय से 'माइंड फुलनेस' विषय में पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। आप भारतीय दर्शन अनुसंधान परिषद नई दिल्ली की अध्येता रही हैं। विगत दस वर्षों से अध्ययन एवं अध्यापन कार्य में संलग्न हैं। वर्ष 2020 में माधवराव सप्रे स्मृति समाचारपत्र संग्रहालय भोपाल द्वारा, सुसंस्कृत पत्रकारिता के लिए प्रतिष्ठित 'के.पी. नारायणन पुरस्कार', वर्ष 2019 में ब्रजभूमि फाउंडेशन मथुरा द्वारा 'नारी शक्ति को प्रणाम' सम्मान तथा वर्ष 2016 में आई.एस.ई.ई. चेन्नै द्वारा 'इनोवेटिव रिसर्चर ऑफ द ईयर' सम्मान प्राप्त। शिक्षा विषय पर दो पुस्तकें संपादित। विभिन्न राष्ट्रीय अंतराष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में शोध पत्र एवं लेख प्रकाशित। दर्शन, अध्यात्म एवं मनोविज्ञान में विशेष रुचि तथा निरंतर लेखन जारी।

शोध-पत्र

कोरोना काल और प्रिंट मीडिया की सामाजिक जिम्मेदारी

■ डा. सोनाली नरगुन्दे, डा. मनीष काले

सारांश

मीडिया, लोकतंत्र का चौथा स्तंभ है। विधायिका, व्यवस्थापिका और न्यायपालिका की तरह ही मीडिया की अपनी जिम्मेदारी है। संकटकाल में इन चारों स्तंभ की भूमिका और भी ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाती है। कोरोना संकट काल में देखें तो मीडिया की भूमिका अहम है। इस दौर में सबसे बड़ा मुद्दा है सही सूचना आम आदमी तक पहुँचाना और प्रिंट मीडिया ने यह काम पूरी ताकत और ईमानदारी से किया। इलेक्ट्रानिक और सोशल मीडिया जैसे संचार माध्यमों ने भी अहम भूमिका निभाई लेकिन प्रिंट मीडिया ने ठोस जानकारी लोगों तक पहुँचाई। यही कारण रहा कि प्रिंट मीडिया खुद की विश्वसनीयता बनाने में सबसे ज्यादा सफल रहा। तथ्यात्मक जानकारी पहुँचाने के साथ ही प्रिंट मीडिया ने अपनी सामाजिक जिम्मेदारी का निर्वाह भी पूरी ईमानदारी से किया। ऐसे समय में जब एक लम्बे समय तक विज्ञापन नहीं आ रहे हैं। घाटे के बाद भी प्रिंट मीडिया अपनी सामाजिक जिम्मेदारी को बखूबी निभा रहा है। कोरोना संकट काल में प्रिंट मीडिया एक नायक की तरह उभरकर सामने आया और प्रामाणिकता के साथ अपनी सार्थकता और उपयोगिता को साबित कर रहा है।

मुख्य शब्द – प्रिंट मीडिया, सूचनाएँ, समाज, जिम्मेदारी, संकटकाल।

प्रस्तावना

मीडिया के सामाजिक दायित्वों को स्वीकारे बिना इसके अस्तित्व की सार्थकता को नहीं समझा जा सकता है। भारतीय प्रिंट मीडिया के संदर्भ में बात करें तो यह और भी ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाता है। जब भी हम भारतीय मीडिया की बात करते हैं तो हमारे सामने स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व की पत्रकारिता ही आदर्श के रूप में होती है। 'जब तोप मुकाबिल हो तो अखबार निकालो' अकबर इलाहाबादी के इस शेर को भी समझें तो इसमें भी मीडिया की ताकत के साथ ही उसकी आवश्यकता और सार्थकता को भी उजागर किया गया है। मीडिया की ताकत की बात करने पर सबसे पहले इस पर चिंतन किया जाना चाहिए कि आखिर मीडिया की आवश्यकता क्या है? इसका जवाब भारतीय पत्रकारिता के पहले कदम में ही छुपा हुआ है। 'उदन्त मार्त्तण्ड' हिन्दी का पहला समाचार पत्र माना जाता है। इसके मुख्य पृष्ठ पर ध्येय वाक्य लिखा हुआ था, वह था 'हिन्दुस्तानियों के हित के हेत'। इस वाक्य को किसी भी व्याख्या की आवश्यकता नहीं है। इन पाँच शब्दों में ही संपादक और प्रकाशक ने अपने होने को परिभाषित किया है। खुद के होने को साबित किया है। खुद के होने का उद्देश्य बताया है। दूसरे शब्दों में कहें तो 'उदन्त मार्त्तण्ड' के अस्तित्व में आने का उद्देश्य ही हिन्दुस्तानियों का हित था। यह कहा जा

सकता है कि यह पत्रकारिता की आदि प्रतिज्ञा है, लेकिन यही सच है। समय चक्र चलता रहा और पत्रकारिता ने कई पड़ाव देखे और खुद में बदलाव भी किए लेकिन बरसों बाद आज भी यही सच है कि पत्रकारिता का उद्देश्य समाज हित में ही निहित है। आज भी मीडिया को खुद के होने को प्रमाणित करना होता है और वह समाज के संदर्भ में ही संभव है। समाज से जोड़कर या समाज के हित में ही मीडिया अपनी सार्थकता सिद्ध कर सकता है।

देश में सामाजिक जागृति लाने वाले महान व्यक्तित्व के धनी राजा राममोहन राय का कहना था कि पत्रकारिता से जुड़े होने के कारण मेरा सिर्फ यही उद्देश्य है कि मैं जनता के सामने ऐसे विचारप्रधान लेख रखूँ जो उसके अनुभवों को बढ़ाए और सामाजिक प्रगति में मददगार सिद्ध हो। मैं अपनी ताकत के साथ शासितों को उनके शासकों द्वारा स्थापित कानून और तरीकों से परिचित कराना चाहता हूँ ताकि शासक जनता को अधिक से अधिक सुविधा देने का अवसर पा सकें और जनता उन उपायों की जानकारी पा सके जिनके द्वारा शासकों से सुरक्षा पाई जा सके और उचित माँगे पूरी कराई जा सके। राय साहब का यह कथन पत्रकारिता को ही परिभाषित नहीं करता है बल्कि समाज के प्रति उनकी जिम्मेदारी और रिश्तों को भी दर्शाता है। महात्मा गांधी, लोकमान्य बालगंगाधर तिलक, बाबूराव विष्णु पराड़कर, गणेश शंकर विद्यार्थी जैसे कई नाम थे, जिन्होंने यह सिद्ध किया कि पत्रकारिता केवल जनता के हित साधने का माध्यम मात्र है।

कोरोना संकट के समय मीडिया को आदर्शों की कसौटी पर परखें तो पता चलता है कि प्रिंट मीडिया समाज के हित साधन में एक सशक्त माध्यम का काम कर रहा है। इलेक्ट्रानिक और सोशल मीडिया की अपनी भूमिका है, लेकिन यह देखना जरूरी है कि संचार के इन माध्यमों में से कौन इस संवेदनशील समय में समाज को न केवल समझ रहा है बल्कि अपनी जिम्मेदारी समझते हुए ज्यादा से ज्यादा उसके हित में काम भी कर रहा है। इस प्रश्न का उत्तर देखें तो प्रिंट मीडिया का नाम सबसे आगे आता है। ऐसे समय में जब विश्वभर से कोरोना के तांडव की खबरें आ रही हैं और लोगों का मन भारी हो रहा है, प्रिंट मीडिया सकारात्मक माहौल बनाने में अहम भूमिका निभा रहा है। यह प्रिंट मीडिया का सबसे उजला पक्ष है। लोगों के मन में मौत के आँकड़े जब नकारात्मकता पैदा कर रहे हैं, तब प्रिंट मीडिया जिंदगी की आस बनाए हुए है। ऐसे समय में जब सूचनाओं का भंडार है और हर मिनिट सैकड़ों सूचनाएँ प्राप्त हो रही हैं, प्रिंट मीडिया लोगों को सही जानकारी देकर राहत देने का काम कर रहा है। कोरोना संकट के समय में प्रिंट मीडिया के पास अपनी सामाजिक जिम्मेदारी निभाने के दो साधन हैं – पहला साधन है समाचार। इस दौर में तथ्यात्मक और सही जानकारी लोगों तक पहुँचाई जा रही है, जिससे भ्रम, डर, अराजकता पर अंकुश लगने के साथ ही नकारात्मकता का माहौल कम हो रहा है। दूसरा साधन है ऐसे प्रयास करना जिससे लोगों में जागरूकता फैलने के साथ ही उनका उत्साह बढ़े और मनोरंजन भी हो, ताकि घरों में कैद रहने को मजबूर लोगों के मन में सकारात्मक विचार पैदा हों। दोनों ही साधनों का प्रयोग प्रिंट मीडिया बखूबी कर रहा है। समाचारों की दृष्टि से प्रिंट मीडिया की सामाजिक जिम्मेदारी की समीक्षा करें तो पता चलता है कि इस संवेदनशील समय में भी वह पूरी ईमानदारी से काम कर रहा है। समाचार पत्रों के लिए समाचार अपनी सामाजिक जिम्मेदारी निभाने का एक बड़ा माध्यम है, जिसका उपयोग वह कर भी रहा है। प्रकाशित खबरों में सही तथ्यों को ही प्रकाशित किया जा रहा है। पूरी जाँच के बाद ही तथ्यों को प्रकाशित किया जा रहा है। परिणाम यह हो रहा है कि भ्रम की स्थिति पैदा करने वाला एक भी आँकड़ा प्रकाशित नहीं हो रहा। आँकड़ों में कोई छेड़छाड़ नहीं की जा रही है। अंदाजे के आधार पर कोई आँकड़ा नहीं दिया जा रहा है। कोरोना संकटकाल में समाचारों

की बाढ़ है, लेकिन ठोस समाचारों को ही प्रकाशित किया जा रहा है। शुद्ध रूप से समाचारों को ही प्राथमिकता दी जा रही है। व्यवस्था को चलाने, सरकारी दिशा-निर्देश और लोगों को जानने वाले जरूरी समाचारों को ज्यादा महत्व दिया जा रहा है। ऐसे समाचारों को प्रमुखता से प्रकाशित किया जा रहा है, जो लोगों में डर या भ्रम की स्थिति पैदा न होने दे।

प्रिंट मीडिया इस समय भी मुद्दों पर ही है। किसी भी तरह का भटकाव नजर नहीं आ रहा है। पूरा फोकस कोरोना पर ही है। किसी अन्य मुद्दे को जन्म ही नहीं लेने दिया जा रहा है। तब्लीगी जमात जैसे साम्प्रदायिक मामलों को प्रिंट मीडिया ने सीमा में ही बाँधे रखा है। जमात के लोगों की भूमिका पर सवाल खड़े किए जा रहे हैं, लेकिन उसे किसी भी तरह से साम्प्रदायिक रूप नहीं दिया गया। सुरक्षाकर्मियों और चिकित्सा सेवा में जुटे स्टाफ पर हुए हमलों को प्रमुखता से प्रकाशित किया जा रहा है, लेकिन उसमें एक वर्ग-विशेष के लोगों को केन्द्रित नहीं किया जा रहा। जिस भी वर्ग के लोग हमले कर रहे हैं, उस पर करारा प्रहार किया जा रहा है। इस भीषण काल में भी सकारात्मक और आशावादी माहौल बनाया जा रहा है। एक तरफ जहाँ कोरोना से मरने वालों की संख्या बढ़ रही है, प्रिंट मीडिया कोरोना को हराकर जिंदगी की जंग जीतने वाली खबरों को प्रथम पेज पर प्रमुखता से प्रकाशित कर रहा है। इसी तरह मौत को मात देकर जीने वाले लोगों की कहानी, विपत्ति में भी हार नहीं मानने वाले प्रसंगों के साथ ही ऐसे समाचारों को प्रकाशित करने में भी प्रिंट मीडिया पीछे नहीं है, जिससे लोगों में आशा का भाव पैदा हो। धार्मिक प्रवचनों, देवी-देवताओं के चमत्कारों के साथ ही प्रेरणा देने वाले गुरुओं के भाषण भी प्रमुखता से प्रकाशित किए जा रहे हैं। रचनात्मकता को बढ़ावा देने, फिल्मी कलाकारों के संदेशों से भी लोगों में उत्साह बनाने की कोशिश की जा रही है। प्रिंट मीडिया ने ऐसे सारे जतन किए जिससे लोगों में निराशा का भाव पैदा न हो और वे कोरोना का पूरी ताकत के साथ मुकाबला कर सकें। कोरोना के कहर वाली नकारात्मक खबरों और सकारात्मक खबरों का तालमेल लगभग समान ही रहा।

इस समय में प्रिंट मीडिया में किसी भी तरह का कोई मीडिया ट्रायल नहीं हो रहा है। सरकारी अव्यवस्थाओं, स्वास्थ्य सुविधा को लेकर कमियों, कोरोना के बीच, पार्टियों के बीच राजनीति जैसे मामले उठाए जा रहे हैं, लेकिन वे समाचार के रूप में ही पेश हो रहे हैं। सम्पादकीय पेज की सामग्री भी प्रिंट मीडिया की सामाजिक जिम्मेदारी का अहसास करा रही है। विचारों वाले इस पेज पर अधिकांश सामग्री की दिशा सकारात्मक है। ऐसे विषयों का चयन ही नहीं किया जा रहा है, जिससे लोगों के मन में डर पैदा हो और भविष्य को लेकर संशय। हर मुद्दे या घटना का सकारात्मक पक्ष लोगों को समझाने की कोशिश की जा रही है, जिसमें प्रिंट मीडिया सफल भी नजर आया। नकारात्मक विषयों पर भी चिंतन किया गया, लेकिन उसकी भयावह तस्वीर पेश नहीं की जा रही है। स्थानीय समाचारों को प्रमुखता दी जा रही है। इस समय में हर क्षेत्र की अलग स्थिति है और इस हिसाब से ही लोगों तक जानकारी पहुँचाना एक बड़ी चुनौती है। साथ ही जानकारी सही और तथ्यात्मक भी होना चाहिए। प्रिंट मीडिया इस जिम्मेदारी को समझते हुए स्थानीय

सूचनाओं को प्रमुखता से प्रकाशित कर रहा है, जिससे लोगों को सही जानकारी मिल रही है। प्रिंट मीडिया ने कोरोना के भारत में प्रवेश के बाद ही इस मुद्दे को अपनी प्राथमिकता में रखा। विदेशों में हुए कोरोना के हमले के समाचार प्रकाशित किए गए, लेकिन वे प्रथम पेज का हिस्सा नहीं बने। अन्य खबरों या मुद्दों को भी प्रमुखता से प्रकाशित किया गया।

लोगों के लिए जरूरी कोरोना से जुड़ी हर जानकारी को प्रिंट मीडिया गहरायी से समझा रहा है। कोरोना से बचाव के उपाय हों, घर में खुद को स्वस्थ रखने की जानकारी, इसके फैलने की स्थिति, हर मुद्दे को गहरायी से तथ्यों के साथ समझाया जा रहा है। परिणाम यह हुआ कि इससे लोगों में जागरूकता बढ़ी और वे कोरोना से लड़ाई के लिए खुद को तैयार कर सके। प्रिंट मीडिया मुद्दे की गंभीरता को समझते हुए इसे राजनीति से पूरी तरह दूर ही रखे हुए है। कोरोना पर राजनीति करने वालों पर प्रहार तो किए लेकिन विरोधी पार्टियों को कोरोना पर राजनीति कर फायदा नहीं उठाने दे रहा है। अधिकांश समाचार पत्र राजनेताओं के बयान, प्रतिक्रिया या राजनीतिक फायदे के लिए किए जा रहे प्रपंच को प्रकाशित करने में रुचि नहीं दिखा रहे हैं। राजनीति को दूर रखने से कोरोना संकट पर किसी भी तरह का राजनीतिक विवाद खड़ा नहीं हो पा रहा है। प्रिंट मीडिया लोगों की नब्ज पकड़ने में भी सफल रहा। आम आदमी के मन में चल रही आशंकाओं के उत्तर भी प्रिंट मीडिया समाचारों के माध्यम से दे रहा है। उसे यह अच्छी तरह से पता है कि आम आदमी को इस संवेदनशील समय में किस तरह की सूचनाओं की आवश्यकता है। उसी को ध्यान में रखकर ऐसे विषयों के समाचारों को प्राथमिकता से प्रकाशित किया जा रहा है। राशन दुकान की जानकारी हो या नगरीय निकायों द्वारा राहत सामग्री पहुँचने की जानकारी या फिर दवाइयों की उपलब्धता वाली जानकारी, प्रिंट मीडिया इस तरह के समाचारों को प्रमुखता से प्रकाशित कर रहा है। इसके साथ ही हेल्प लाइन नंबरों, अधिकारियों के नंबर, हास्पिटल के नंबरों जैसी हर जानकारी को प्रिंट मीडिया स्थानीय लोगों तक आवश्यकता के अनुसार प्रकाशित कर रहा है।

कोरोना संकट में लगे सुरक्षा-कर्मियों, चिकित्सकों एवं स्टॉफ, प्रशासनिक अधिकारियों के सामने एक अलग तरह की चुनौतियाँ है। मौत के तांडव के बीच काम करना कोई आसान काम नहीं है। ऐसे में इन लोगों का उत्साह बनाए रखने की जिम्मेदारी भी प्रिंट मीडिया ने बखूबी निभाई है। कोरोना के खिलाफ जंग लड़ने वालों के कार्यों को जमकर सराहा जा रहा है। इतना ही नहीं खाना या आवश्यक वस्तुएँ गरीबों को बाँटने वाली स्वयंसेवी संस्थानों के कार्यों को भी प्रमुखता से प्रकाशित किया जा रहा है, जिससे कई अन्य लोग भी इस कार्य के प्रति प्रभावित हो रहे हैं। इतना ही नहीं अपनी जिम्मेदारी को समझते हुए प्रिंट मीडिया ब्रेकिंग समाचार भी लोगों तक पहुँचा रहा है। इसके लिए वह विभिन्न सोशल मीडिया मंचों का उपयोग कर रहा है। इस समय प्रिंट मीडिया हर नई जानकारी को सोशल मीडिया पर अपने ब्रैंड नाम के साथ पोस्ट कर रहा है, ताकि तेजी से सही सूचनाएँ पाठकों तक पहुँचा सके। परिणाम यह हो रहा है कि तत्काल लोगों को सही जानकारी मिल रही है। सूचना के साथ प्रिंट मीडिया के ब्रैंड नाम होने से विश्वसनीयता भी बनी रही। समाचार पत्र के रिपोर्टर भी वीडियो बनाकर तत्काल सूचनाओं को लोगों तक सोशल मीडिया के माध्यम से पहुँचा रहे हैं।

द हिन्दू, टाइम्स ऑफ इंडिया, दैनिक भास्कर, पत्रिका, नईदुनिया, पायोनियर, जनसत्ता, नवभारत टाइम्स जैसे देश के सभी प्रमुख समाचार पत्र ने अपनी सामाजिक जिम्मेदारी का निर्वाह भी पूरी ईमानदारी के साथ किया। मध्यप्रदेश के तीन प्रमुख समाचार पत्र दैनिक भास्कर, नई दुनिया और पत्रिका की बात करें तो तीनों ने तथ्यपरक समाचार देने के साथ ही समाज के प्रति अपनी विशेष भूमिका तय करते हुए दूसरे साधन का उपयोग भी बखूबी किया। तीनों ही समाचार पत्रों ने कोरोना

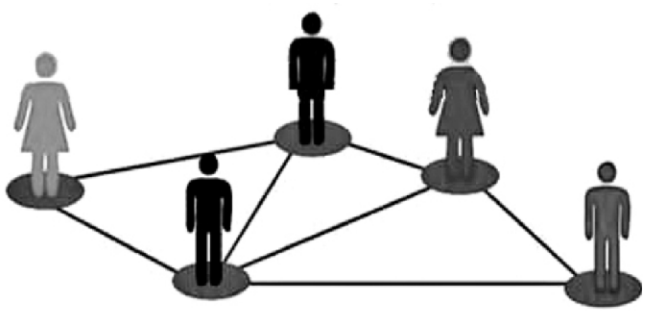

संकट काल में ऐसे बहुत से कदम उठाए जो उनकी सामाजिक जिम्मेदारी का प्रतीक है। लाकडाउन के दौरान घर में कैद लोगों के मनोरंजन करने की बात हो या फिर उन्हें कोरोना से जागरूक करने की, हर मोर्चे पर समाचार पत्र अग्रणी भूमिका में नजर आए। तीनों की समाचार पत्रों ने इस समय में जमकर ऐसे प्रयोग किए, जो उनकी पहचान बन गए। विज्ञापन के लिए एक-एक इंच का सौदा करने वाले इन समाचार पत्रों ने कोरोना के खिलाफ जंग में जी खोलकर जगह दी। विज्ञापन से लोगों को जागरूक करने की बात करें या फिर कॉन्टेस्ट के द्वारा लोगों का मनोरंजन करने की, हर मोर्चे पर समाचार पत्र आगे रहे। इस समय में प्रबंधकों के लिए ये समाचार पत्र एक व्यापार नहीं बल्कि सामाजिक मिशन है।

विश्व के तीसरे नंबर वाले समाचार पत्र दैनिक भास्कर की बात करें तो कोरोना संकट काल में इस समाचार पत्र ने जमकर प्रयोग किए। लाकडाउन के दौरान दूरी बनाए रखना एक आवश्यक कदम है, ताकि कोरोना के संक्रमण को रोका जा सके। दैनिक भास्कर ने लोगों को इसका संदेश देने के लिए अपने हेडर के शब्दों को दूर-दूर किया। सामान्य: हेडर में किसी भी तरह का कोई बदलाव नहीं किया जाता है। विशेष अवसरों पर ही हेडर से छेड़छाड़ की जाती है, लेकिन वह भी किसी एक दिन। इसके ठीक उल्टा कोरोना के संकट काल में दैनिक भास्कर पूरे समय अपने हेडर के शब्दों को दूर-दूर प्रकाशित किए हुए है। 'सेवा परम धर्म' नाम से एक मिशन चलाया, जिसमें गरीब लोगों तक राशन पहुँचाया गया। भास्कर फाउंडेशन के तत्वावधान में यह मिशन संचालित किया गया। 12 राज्यों के करीब 40 शहरों में यह मिशन चलाया गया और करीब एक लाख से अधिक गरीब परिवारों को राशन पहुँचाया गया। खास बात यह थी कि भास्कर ग्रुप ने इस मिशन के लिए एक करोड़ रुपये की राशि सहायतार्थ दी। मिशन के तहत लोगों से भी पैसा एकत्रित कर लोगों को राहत पहुँचाई गई। कोरोना संक्रमितों के इलाज में लगे डॉक्टरों, सुरक्षा कर्मियों के साथ ही अन्य लोगों के लिए पीपीई किट एक महत्वपूर्ण उपकरण था। सरकार अपने स्तर पर कीट का इंतजाम कर रही थी, लेकिन भास्कर ने भी 5000 कीट के लिए प्रशासन को 15 लाख रुपये दिए। लाकडाउन के दौरान घरों में रहने को मजबूर बच्चों की मानसिक स्थिति को समझते हुए भास्कर ने उनके लिए एक पेज विशेष सामग्री का प्रकाशन हर रोज किया। कोरोना संकट आरंभ होते ही भास्कर ने बच्चों के लिए बाल भास्कर का प्रकाशन किया, जिसमें चुटकुले, कहानी, चित्र पहचानो, रंग भरो, कविताओं का प्रकाशन किया, ताकि बच्चों का मन लगा रहे। घर के बड़े सदस्यों की तरह भास्कर ने बच्चों का इस दौरान ध्यान रखा, ताकि बच्चों में किसी भी तरह का मानसिक तनाव नहीं आए। लोगों को कोरोना संक्रमण से बचाने के लिए भास्कर ने अपने स्तर पर विज्ञापन भी जारी किए। यह पहला मौका था जब भास्कर ने लोगों को जागरूक करने के लिए समाचारों के साथ खुद के विज्ञापनों का सहारा लिया।

अपनी पहचान के अनुरूप पत्रिका ने भी कोरोना संकटकाल में अपनी सामाजिक जिम्मेदारी का पूरी ईमानदारी से निर्वाह किया। इस समय में पत्रिका ने न केवल कोरोना को लेकर जागरूक करने के लिए विज्ञापनों का सहारा लिया बल्कि कोरोना काल में सामाजिक जिम्मेदारी का

निर्वाह करने वालों को कर्मवीर शब्द से नवाजकर उन्हें हौसला भी दिया। पत्रिका ने भी अपने हेडर में बदलाव कर लोगों को लाकडाउन के दौरान जागरूक किया। पत्रिका ने हाथ धोने, कोरोना वायरस से बचने के लिए दूरी बनाए रखने जैसी कई थीम हेडर पर ही लोगों को समझाई। पत्रिका ने हेडर पर इस तरह के कई प्रयोग किए। समाचार पत्र हाथ में लेते ही पाठक को लाकडाउन के दौरान बरती जाने वाली सावधानी की जानकारी देना ही पत्रिका का उद्देश्य था, जिसमें वह सफल भी रहा। लोगों के इलाज और सुरक्षा में लगे लोगों को प्रोत्साहित करने के लिए पत्रिका ने उन्हें कर्मवीर सम्मान से सम्मानित किया। अपनी जान की परवाह किए बिना लोगों की जान बचाने में लगे लोगों के कामों को सलाम करने के उद्देश्य से यह कदम उठाया गया। कोरोना के दौरान निजी डॉक्टरों ने मरीजों को देखना बंद कर दिया था और अधिकांश हास्पिटल की ओपीडी भी बंद कर दी गई थी। ऐसे में आम मरीजों की मुश्किलें बढ़ी हुई थीं, तब पत्रिका ने लोगों और डॉक्टरों के बीच सेतु का काम किया और डॉक्टरों से मरीजों को परामर्श दिलवाया। इस कदम से लोगों की मुश्किलें कम हुईं। लाकडाउन के दौरान घरों में बंद लोगों की मानसिक स्थिति को मजबूत रखने के लिए विभिन्न विषयों पर विशेषज्ञों के लेक्चर करवाए गए। ये लेक्चर पत्रिका के फेसबुक पेज पर करवाए गए, जिसका फायदा हजारों लोगों तक पहुँचा। इसे की-नोट लेक्चर का नाम दिया गया। लोगों को प्रेरित करने के लिए मोटिवेशन गुरुओं के साथ ही योग गुरुओं के भी लेक्चर करवाए गए। कोरोना के संकट काल में जब सब कुछ बंद था, पत्रिका ने भविष्य की चिंता करते हुए देश की अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाने के लिए एक सार्थक पहल की। पत्रिका ने वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के जरिये उद्योगपतियों और अर्थशास्त्रियों से चर्चा कर सुझाव लिए और सरकार तक पहुँचाए। कोरोना संकट खत्म होने के बाद अर्थव्यवस्था को सुधार लाना सरकार के लिए एक महत्वपूर्ण कदम होगा। पत्रिका समूह ने इस दौरान एक विशेष गीत तैयार करवाया, जिसमें भारत की एकता और अखण्डता को दर्शाया गया। इसमें लोगों को कोरोना वायरस से लड़ने के लिए हौसला रखने की बात कही गई है। यह गीत लोगों में आशा की किरण जगाता है, जो ऐसे समय में एक महत्वपूर्ण कदम है।

नईदुनिया ने भी इस संकट काल में अपनी सामाजिक जिम्मेदारी को बखूबी समझा और समाचार पत्र से हटकर लोगों को जागरूक करने के लिए हर संभव कदम उठाए। लोगों को जागरूक करने के लिए नईदुनिया ने भी विज्ञापनों का सहारा लिया। प्रबंधन की ओर से खुद विज्ञापन जारी कर लोगों को समझाइश दी गई। हर रोज किसी बड़े कलाकार के फोटो के साथ जागरूकता का संदेश दिया जाता था, ताकि अधिक से अधिक लोग इसे समझें और उसका पालन करें। जागरण सरोकार, स्वस्थ समाज के नाम से इसे प्रकाशित किया जाता है। 'कोरोना को हराना है' लोगों के साथ हर पेज पर कोरोना से बचने के लिए हाथ धोने, दूरी रखने, मास्क लगाने जैसे संदेश चित्रों के माध्यम से दिए गए। उद्देश्य स्पष्ट था कि पाठक जिस भी पेज को पढ़े उसे कोरोना से बचने के लिए जागरूक किया जा सके। 'नईदुनिया कुछ पॉजिटिव करोना' नाम से एक प्रतियोगिता चलाई गई, जिसमें पाठकों को हर रोज एक थीम दी जाती थी, जिस पर आधारित खुद की एक फोटो उसे नईदुनिया को भेजनी होती थी। सबसे अच्छी फोटो को समाचार पत्र में प्रकाशित किया जाता था। प्रतियोगिता का उद्देश्य लोगों को थीम के माध्यम से जागरूक करने के साथ ही घरों में रह रहे लोगों का उत्साह बढ़ाना और मनोरंजन भी था। अपने पाठकों के स्वास्थ्य का ध्यान रखते हुए सेहत परामर्श नाम से भी एक मिशन चलाया गया, जिसमें मरीजों को विशेषज्ञ डॉक्टरों से अपनी बीमारी के बारे में परामर्श दिया जाता था। कोरोना संकट काल में डॉक्टरों से चर्चा नहीं होना एक आम समस्या थी, जिसका समाधान नईदुनिया ने इस तरह निकाला। मरीज अपनी बीमारी को लेकर डॉक्टरों से वाट्सअप पर चर्चा

कर समाधान प्राप्त कर सकते थे। ईमानदारी से ड्यूटी करने वाले कर्मचारियों और सहायता करने वाले लोगों को प्रोत्साहित करने के लिए 'हमारे योद्धा' मिशन चलाया गया। शहर के कई लोगों को इसमें सम्मानित किया गया।

प्रिंट मीडिया की विश्वसनीयता और सामाजिक जिम्मेदारी का ही परिणाम था कि कोरोना के कारण लगे लाकडाउन के समय समाचार पत्र पढ़ने वाले लोगों की संख्या बढ़ी है। एबास फील्ड एंड ब्रांड सॉल्यूशंस ने लाकडाउन के दौरान पाठकों के अखबार पढ़ने के समय पर राज्यों में सर्वे किया, जिसमें यह परिणाम सामने आया है। इस सर्वे में यह निकलकर आया कि देश में करीब 38 प्रतिशत पाठक रोज एक घंटे से ज्यादा समय समाचार पढ़ने के लिए दे रहे हैं। लाकडाउन के पहले यह 16 प्रतिशत था। यानी एक घंटे से ज्यादा समाचार पढ़ने वाले लोगों की संख्या बढ़कर दोगुनी से ज्यादा हुई है। सर्वे में यह भी कहा गया है कि प्रिंट मीडिया की विश्वसनीयता के चलते समाचार पत्रों से पाठकों का जुड़ाव और गहरा हुआ है। यह सर्वे 13 से 16 अप्रैल के बीच फोन के माध्यम से किया गया। सर्वे में यह भी सामने आया है कि लाकडाउन से पहले 42 प्रतिशत पाठक समाचार पत्रों को 30 मिनिट से ज्यादा समय देते थे, जबकि इसके बाद 30 मिनिट से ज्यादा समय देने वालों पाठकों की संख्या बढ़कर 72 प्रतिशत हो गई है। लाकडाउन के पहले पाठक समाचार पत्र पढ़ने के लिए औसतन 38 मिनिट देते थे, जबकि बाद में यह समय 60 मिनिट हो गया है।

इस समय में प्रिंट मीडिया एक नायक की तरह उभरकर सामने आया और प्रामाणिकता के साथ अपनी सार्थकता और उपयोगिता को साबित कर रहा है।

कहा जाता है कि संकट काल में ही व्यक्ति या व्यवस्था की पहचान होती है। संकटकाल ही किसी के भी चरित्र को परखने का सही समय होता है। कोरोना जैसे संकटकाल में प्रिंट मीडिया का असली चेहरा सामने आया, जो अन्य मीडिया की तुलना में ज्यादा साफ और जिम्मेदार नजर आ रहा है। यह ज्यादा उजला नजर आ रहा है, जो लोगों के साथ खड़ा था। प्रिंट मीडिया इस कसौटी पर खरा उतरता नजर आ रहा है, जो भविष्य के लिए अच्छे संकेत भी दे रहा है। कमर्शियल हो जाने के आरोपों से हमेशा घिरे रहने वाले प्रिंट मीडिया ने कोरोना महामारी के समय में अपनी सकारात्मक उपयोगिता को सिद्ध किया है। इस दौर में प्रिंट मीडिया द्वारा किए गए कार्यों ने इसे अन्य माध्यमों की तुलना में ज्यादा सशक्त और विश्वसनीय संचार माध्यम में रूप में स्थापित किया। दुनिया में सोशल मीडिया, टीवी, रेडियो, डिजिटल मीडिया जैसे कई अन्य माध्यम चाहिए, लेकिन अंत में वही बना रहेगा जिसका आधार विश्वास होगा और विश्वास का आधार प्रामाणिक समाचार होंगे। सोशल मीडिया और डिजिटल मीडिया को अभी विश्वास जितना बाकी है। फिलहाल प्रिंट मीडिया में ही यह सब नजर आ रहा है।

संदर्भ

1. बिजूर. एच., (2020) कोविड-19 के समय में प्रिंट, दैनिक भास्कर, 9 अप्रैल 2020, इंदौर।
2. सचदेव. वी., (2015) राज्य, समाज और मीडिया, आंचलिक पत्रकार, अगस्त 2015, भोपाल।
3. लॉकडाउन में बदली पढ़ने की आदतें, दैनिक भास्कर, 23 अप्रैल 2020, पेज - डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू.नईदुनिया.कॉम।
4. डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू.दैनिकभास्कर.कॉम।
5. डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू.पत्रिका.कॉम।

डा. सोनाली नरगुन्दे एसोसिएट प्रोफेसर,
पत्रकारिता एवं जनसंचार अध्ययनशाला,
देवी अहिल्या वि.वि., इंदौर,
डा. मनीष काले अतिथि व्याख्याता,
पत्रकारिता एवं जनसंचार अध्ययनशाला,
देवी अहिल्या वि.वि., इंदौर
(Email : manish1kale@gmail.com)

शोध-पत्र

कोरोना काल में इलेक्ट्रानिक मीडिया

बिजनेस माडल में दबी सामाजिक जिम्मेदारी

■ डा. सोनाली नरगुन्दे, डा. मनीष काले

सारांश

हर वस्तु का अपना चरित्र है, अपना गुण है जो उसकी पहचान बनाता है। बिना चरित्र के किसी भी वस्तु की उपयोगिता भी सिद्ध नहीं होती है। यदि वस्तु से उसका चरित्र ही छीन लिया जाए तो उसकी उपयोगिता अपने आप ही खत्म हो जाती है। यह बात प्रकृति के साथ ही मानवजनित तंत्र पर भी लागू होती है। समय-समय पर तंत्र को अपनी उपयोगिता साबित करना होती है, जो उसका चरित्र ही होता है। यानी चरित्र के नष्ट होने के साथ ही उपयोगिता भी खत्म हो जाती है। मीडिया के संदर्भ में यदि बात करें तो भी इसके सामाजिक दायित्वों को स्वीकारे बिना इसके अस्तित्व की सार्थकता को नहीं समझा जा सकता है। मीडिया तभी तक अस्तित्व में है, जब तक वह अपने सामाजिक दायित्वों का निर्वाह पूरी ईमानदारी से कर रहा है। संकटकाल में मीडिया का यह दायित्व और भी ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाते है। कोरोना महामारी के समय में सोशल मीडिया के सामने अविश्वसनीयता का सवाल है तो प्रिंट मीडिया के सामने तत्काल नहीं पहुँचने का। ऐसे में इलेक्ट्रानिक मीडिया की भूमिका और भी ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाती है। कोरोना महामारी फैलने के संवेदनशील समय में इलेक्ट्रानिक मीडिया की भूमिका की समीक्षा ही इस शोध का उद्देश्य है।

मुख्य बिंदु – इलेक्ट्रानिक मीडिया, कोरोना, जिम्मेदारी, उपयोगिता, समाज।

प्रस्तावना

मीडिया और समाज को कभी भी अलग-अलग कर परिभाषित नहीं किया जा सकता है। भारतीय मीडिया को तो और भी नहीं। यहाँ मीडिया और समाज के बीच एक ऐसा रिश्ता है, जो दोनों को एक दूसरे से कभी भी, किसी भी परिस्थिति में अलग नहीं कर सकता है। दूसरे शब्दों में कहे तो मीडिया और समाज एक ही सिक्के के दो पहलू है। एक के बिना दूसरा अधूरा है। भारत में मीडिया के अपने सामाजिक दायित्व है, जिसे पूरा करना मीडिया का दायित्व है। शुरुआत यदि मीडिया के अस्तित्व से करें तो सबसे बड़ा सवाल यही आता है कि आखिर मीडिया की आवश्यकता क्या है ? भारतीय पत्रकारिता के आरंभ को देखें तो इसका उत्तर हमें आसानी से मिल जाता है। भारत के पहले हिन्दी समाचार पत्र 'उदन्त मार्त्तण्ड' के ध्येय वाक्य में ही इसका उत्तर छिपा हुआ है। पत्र का ध्येय वाक्य था 'हिंदुस्तानियों के हित के हेत' यानी हिन्दुस्तानियों के हित के लिए। स्पष्ट है हिन्दुस्तानियों के हितों को नजरअंदाज कर समाचार पत्र की कल्पना ही नहीं की जा सकती। यही ध्येय वाक्य समाचार पत्र के सामाजिक दायित्व को भी परिभाषित और इंकित करता है। यह पत्रकारिता की आरंभिक प्रतिज्ञा थी, लेकिन समय के साथ कई माडल आए लेकिन मूल ध्येय आज भी समाज ही है। समय-समय पर मीडिया को भी अपने आप को प्रमाणित करना होता है, लेकिन उसका आधार भी समाज ही होता है।

मीडिया यदि अपनी सार्थकता समाज के आधार पर प्रमाणित नहीं करता है तो फिर कई सवाल खड़े

होते हैं और जिस मीडिया को सवाल पूछने का अधिकार है, उससे भी सवाल पूछे जाने लगते हैं। वह भी समाज के लिए सुर्खियाँ हो जाता है। कोरोना संकटकाल में समाज आधारित प्रामाणिकता की बात करें तो मीडिया सवालों के घेरे में है। प्रिंट, इलेक्ट्रानिक और सोशल मीडिया की भूमिका को देखे तो पता चलाता है कि प्रिंट और सोशल मीडिया की अपनी अलग मजबूरियाँ है। प्रिंट एक तय समय के बाद ही लोगों तक पहुँचता है, जबकि कोरोना जैसे संवेदनशील समय में लोगों को हर जानकारी तत्काल चाहिए होती है। सोशल मीडिया की बात करें तो बिना जाँचे सामग्री प्रसारित करने को लेकर यह मंच हमेशा से ही सवालों में रहा है। कोरोना महामारी के समय में भी अविश्वसनीयता के बादल इस पर मंडराते रहे। बात आती है इलेक्ट्रानिक मीडिया की, जिसकी तरफ लोग आशा भरी निगाहों से देखते हैं, लेकिन वह इस कसौटी पर पूरी ईमानदारी से खरा उतरता नजर नहीं आया। यही वह माध्यम था, जिस पर तत्काल सूचना मिलने के साथ ही अविश्वसनीयता का सवाल नहीं था, लेकिन वह अपनी जिम्मेदारी ही समझ नहीं पाया। इस मीडिया पर सामाजिक जिम्मेदारी की बजाय टीआरपी को बढ़ाने वाला बिजनेस मॉडल ही हावी नजर आया।

भारतीय मीडिया ने अखबार से लेकर सोशल मीडिया तक का लम्बा सफर तय किया है। इस बीच रेडियो और इलेक्ट्रानिक मीडिया के महत्वपूर्ण पड़ाव भी देखे। सन 1990 में भारतीय अर्थव्यवस्था के उदारीकरण ने भारत की नीतियों को बदल कर रखा दिया और इसका प्रभाव मीडिया पर भी पड़ा। बड़े कारपोरेट घरानों, बड़े उद्योगपतियों, राजनीतिक वर्ग ने अपने ब्रांड की छवि को बेहतर बनाने के लिए मीडिया में निवेश किया। कुल मिलाकर मीडिया पूँजीपतियों के कब्जे में आ गया और उन्होंने इसे अपनी सुविधा के अनुसार संचालित करना आरंभ कर दिया। इलेक्ट्रानिक मीडिया पर इसका सबसे ज्यादा असर पड़ा। जिन मुद्दे का सच लोगों को पता होना चाहिए था, वह पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण के साथ प्रसारित होने लगे। यही कोरोना जैसे संकटकाल में भी देखने को मिला। इस समय में भी इलेक्ट्रानिक मीडिया अपने बिजनेस मॉडल में ही उलझता नजर आया। अपनी जिम्मेदारी के पहले इस मीडिया को अपनी टीआरपी बढ़ाना थी और इसी को आधार मानकर समाचारों का पूरा खाता तैयार किया गया। कोरोना संकटकाल में लोगों को सही जानकारी देना सबसे अहम मुद्दा था। सही जनकारी नहीं होने के कारण इसका फैलाव होना ही था। ऐसे में मीडिया ही एकमात्र ऐसा साधन था, जिसके माध्यम से लोगों तक सही जानकारी देकर उनको संक्रमण से बचाया जा सकता था। ऐसा हुआ भी लेकिन इलेक्ट्रानिक मीडिया यानी न्यूज चैनल मुद्दे से भटकते नजर आए। सबसे गैरजिम्मेदाराना मामला था, कोरोना के संक्रमणकाल में भी मामले को साम्प्रदायिकता का रंग देना। न्यूज चैनलों ने इसमें कोई कसर नहीं छोड़ी।

साम्प्रदायिक रंग

कोरोना की भारत में शुरुआत होने के कुछ दिनों तक तो न्यूज चैनल सही दिशा में चले और केवल कोरोना से बचने और उससे उत्पन्न स्थिति पर ही समाचारों का प्रसारण किया गया, लेकिन नईदिल्ली के निजामुद्दीन में तब्लीगी जमात के लोगों का एक ही जगह पर एकत्रित मिलने और जमातियों के देशभर में फैल जाने को न्यूज चैनल वालों ने ऐसा रंग दिया दिया कि पूरा मामला ही पटल गया। जामातियों की गलती थी और उसे मीडिया में दिखाया जाना भी लाजमी था। प्रिंट और सोशल मीडिया ने भी इन समाचारों को जमकर प्रसारित किया और समीक्षा कर जमातियों को कटघरे में खड़ा भी किया, लेकिन न्यूज चैनलों ने तो कोरोना को छोड़कर जमातियों या यूँ कहे मुस्लिमों को ही मुख्य मुद्दा बना दिया। इस घटना के बाद न्यूज चैनल वालों ने कोरोना की जंग को मुस्लिमों के खिलाफ जंग में बदल दिया। हर रोज कोरोना से जुड़ी खबरों से ज्यादा जमातियों के कारण कोरोना फैलने की खबरों को प्रमुखता से

प्रसारित किया जाने लगा। दोपहर बारह बजे से लेकर शाम सात बजे तक लगभग सभी चैनलों पर कोरोना की जंग पर केवल साम्प्रदायिकता का रंग ही चढ़ा नजर आ रहा था। चैनलों पर वही जाने पहचाने चेहरे, वही पुरानी साम्प्रदायिक कहानियाँ, वही दलीलें और तर्क के साथ कट्टरपंथी लोग एक-दूसरों पर आरोप लगाते हुए नजर आ रहे थे। कोरोना पर पूरी तरह से जमाती वाला मामला हावी हो गया। कोरोना फैलाने को लेकर जमातियों पर सवाल उठते-उठते इस मामले ने कब पूरी मुस्लिम कोम को घेरे में ले लिया, पता ही नहीं चला। कोरोना फैलाने में जमातियों की भूमिका से शुरू हुई चर्चा कश्मीर मुद्दे और आतंकवाद में मुस्लिमों की भूमिका तक पहुँच गई। कोरोना का हर पहलू कहीं न कहीं मुस्लिमों पर आकर छोड़ दिया गया।

कथित राष्ट्रवादी मीडिया का आरोप झेल रहे मीडिया ने भारतीय मुस्लिमों को अविश्वसनीय बता दिया। इस मामले पर मीडिया पूरी तरह से एक तरफा नजर आया। इस मुद्दे पर न्यूज चैनल वालों ने तथ्यों को भी कहीं से भी जोड़-तोड़कर दिखाया, ताकि इसे पूरी तरह से साम्प्रदायिक रंग दिया जा सके। आखिर क्यों न हो, पूरा मामला टीआरपी से जो जुड़ा हुआ था। एक न्यूज चैनल से आंरभ हुए इस सिलसिले ने कुछ ही दिनों में पूरे इलेक्ट्रानिक मीडिया को अपने घेरे में ले लिया था। एक-दो चैनलों को छोड़कर सभी पर कोरोना की जंग में जमातियों और मुस्लिमों को ही घेरे में लिया जा रहा था। कुछ ही दिनों में यह इलेक्ट्रानिक मीडिया का नया ट्रेड था।

इस दौर में न्यूज चैनलों पर पक्षपात भी जमकर किया गया। जमातियों की गलतियाँ तो न्यूज चैनल वालों ने जमकर बताई, लेकिन मुस्लिम समाज को घर पर रहने का संदेश देने वाले मौलवियों को कम से कम दिखाया गया। इतना ही नहीं मुस्लिम समाज का कट्टर चेहरा माने जाने वाले असदुद्दीन ओवैसी के उस बयान को न्यूज चैनल वालों ने कोई महत्व ही नहीं दिया, जिसमें वे मुस्लिमों से नमाज में जमा नहीं होने और लाकडाउन का पूरा पालन करने की अपील कर रहे थे। हाँ, यह जरूर हुआ कि मामले को स्थापित करने के लिए फर्जी मौलानाओं के बयान दिनभर प्रसारित किए गए। पूरे मामले में जमातियों और मौलाना साद को गुनहगार माना जाना था, लेकिन मामले को जमातियों तक ही सीमित रखा जाना चाहिए था, न कि पूरी मुस्लिम कौम की भूमिका पर सवाल खड़े किए जाने थे। इतना ही नहीं मुस्लिमों के सबसे पवित्र स्थान मक्का के काबा को बंद करने की खबरों को भी नहीं दिखाया गया। पूरी मुस्लिम कौम पर कोरोना कैरियर का ठप्पा लगा दिया गया, जो जरूरी नहीं था। न्यूज चैनल वालों ने मुस्लिम वर्ग से जुड़े हर मामले में मीडिया ट्रायल किया और मुस्लिम कौम के कारण कोरोना फैलने का अपना फैसला भी सुना दिया। परिणाम यह हुआ कि भारत में ही मुस्लिमों का बहिष्कार करने, उनसे काम नहीं लेने के साथ ही उनके लिए अलग से वार्ड बनाने जैसे मुद्दों ने जन्म लिया। भविष्य में भी यह खायी बढ़ेगी और देश एक अनचाही अशांति के बीच फँस जाएगा। यह हिन्दू-मुस्लिमों के बीच सामाजिक बँटवारे जैसा भी होगा, जिसका समाधान किसी सरकार के पास नहीं होगा।

राजनीति

प्रिंट मीडिया ने जहाँ पूरे मामले पर राजनीति नहीं होने देने का पूरा प्रयास किया, वहीं न्यूज चैनलों वालों ने इसे राजनीति से न केवल जोड़ा बल्कि एक विशेष राजनीति पार्टी की विचारधारा को आधार बनाकर ही समाचारों का प्रसारण किया गया। एक राजनीतिक पार्टी इस मामले को इसी तरह साम्प्रदायिक रंग में देखना भी चाहती थी, न्यूज चैनल वालों को उसने एक हथियार के रूप में उपयोग किया या यूँ कहे कि इलेक्ट्रानिक मीडिया वाले उस पार्टी के प्रवक्ता की तरह ही पेश आए। जो बातें ये पार्टी कह रही थी, न्यूज चैनलों पर भी वही भाषा और तर्क दिए जा रहे थे। इसी विशेष राजनीतिक दल के लोगों ने न्यूज चैनलों की बहस में आकर भी इसे साम्प्रदायिक रंग देने में कोई

न्यूज चैनलों को निष्पक्ष होकर मुद्दे की समीक्षा की जानी थी। यदि इस संकटकाल से निपटने में कही केंद्र सरकार कमजोर पड़ती या कोई कमी नजर आती तो न्यूज चैनल वालों को सही मार्गदर्शन करना चाहिए था। जैसा कि अन्य मुद्दों पर न्यूज चैनल वाले करते आए हैं। लोकतांत्रिक व्यवस्था में माना जाता है कि जब तक विपक्ष की बात को प्रमुखता से नहीं उठाया जाता है, तब तक सशक्त लोकतंत्र की स्थापना नहीं हो सकती है। वैसे भी यदि केंद्र सरकार और विपक्ष के कामों की समीक्षा करने का काम मीडिया का है तो सरकार के कामों की समीक्षा का जिम्मा विपक्षी पार्टियों के पास भी होता है। ऐसे में विपक्ष की आवाज को भी प्रमुखता से उठाना न्यूज चैनल वालों की जिम्मेदारी थी, ताकि केंद्र सरकार की कमजोरी को पकड़कर कोरोना की जंग को और भी सशक्त तरीके से लड़ा जा सके। लेकिन ऐसा नहीं हुआ और न्यूज चैनल वालों ने केंद्र सरकार का एकतरफा साथ दिया। यह भी कहा जा सकता है कि तथाकथित राष्ट्रभक्ति की आड़ में न्यूज चैनल वालों ने एक पार्टी विशेष को छोड़ किसी के पक्ष को महत्व ही नहीं दिया, जिसे पार्टी विशेष को राजनीतिक फायदा पहुँचाने के रूप में देखा जा सकता है।

कसर नहीं छोड़ी। विपक्षी पार्टियों के पक्ष को नजरअंदाज किया गया। थोड़ बहुत पक्ष प्रसारित भी किया गया तो अंत में मीडिया ने ही उसका खारिच भी कर दिया। इतना ही नहीं राज्यों के बीच होने वाली राजनीति को भी न्यूज चैनल वालों ने जमकर हवा दी। नईदिल्ली, हरियाणा के बीच सीमा को लेकर उठे विवाद में न्यूज चैनल वालों की अहम भूमिका रही। लाकडाउन के बीच कोटा से छात्रों को लाने के मुद्दे पर भी न्यूज चैनल वालों ने ही बिहार, उत्तरप्रदेश और राजस्थान की राज्य सरकारों के बीच जमकर नूरा कुश्ती करवाई। लाकडाउन के बीच गरीब मजदूरों के पलायन को लेकर भी न्यूज चैनल वालों ने नईदिल्ली और बिहार की सरकारों के बीच खायी बढ़ाने का काम किया।

एकपक्षीय

एक खास बात यह भी रही कि मीडिया ने सत्तापक्ष की खबरों को ज्यादा महत्व दिया। प्रमुख विपक्ष दल कांग्रेस के साथ ही अन्य पार्टियों के कथनों को कम महत्व दिया गया। साथ ही कोरोना से बचाव को लेकर केंद्र सरकार द्वारा उठाए गए कदमों की समीक्षा न्यूज चैनलों पर नहीं के बराबर की गई, जबकि वह समय की माँग थी। एक भी न्यूज चैनल वाले ने सरकार से सवाल ही नहीं किए। दूसरी तरफकांग्रेस के बयानों का पूरा पोस्टमार्टम किया गया। यहाँ तक की कांग्रेस के बयान भी मीडिया ट्रायल से नहीं बच सके। अन्य विपक्ष दलों के बयानों के साथ भी न्यूज चैनल वाले न्याय नहीं कर सके। जबकि आवश्यकता इस बात की थी कि

अपुष्ट समाचार

कोरोना संकटकाल में न्यूज चैनलों पर ब्रेंकिग देने के चक्कर में कई खबरों को बिना पुष्टि के ही प्रसारित कर दिया गया। कोरोना का सर्वे करने वाली टीम पर हुए हमलों की खबरों में कई तथ्यों को बिना जाँचे ही प्रसारित किया गया। परिणाम यह हुआ कि जिस समाचार को दोपहर में जिन तथ्यों के साथ दिखाया गया जाता था, शाम तक उसके सभी तथ्य बदल जाते थे। यानी न्यूज चैनल अपनी ही खबरों का खंडन कर रहे थे। ऐसा कई मामलों में हुआ। सामान्य विवादों को भी पहले तो कोरोना से जोड़कर ही बताया गया। कोरोना के आँकड़ों को भी फेर बदलकर पेश किया जाता रहा,

जिससे भय का माहौल बना। न्यूज चैनल वालों ने ही अरुणाचल में जिस समय 11 मरीज कोरोना संक्रमित होने का समाचार प्रसारित किया, उस समय यहाँ पर एक भी मरीज कोरोना का नहीं था। बाद में न्यूज चैनल को सार्वजनिक तौर पर माफी माँगनी पड़ी। उत्तरप्रदेश के भदोही में एक महिला द्वारा पाँच बच्चों को नदी में फेंकने के बाद आत्महत्या करने की खबर न्यूज चैनल पर प्रसारित की गई। कोरोना के बाद लगे लाकडाउन में खाना नहीं मिलने को इसका कारण बताया गया, जबकि जाँच में पता चला कि महिला ने पारिवारिक विवादों में यह कदम उठाया था। जल्दबाजी में ऐसी कई अपुष्ट समाचार प्रसारित किए गए, जिन्होंने भय का माहौल बनाया।

सूचनाओं की बारिश

कोरोना संकटकाल में लोगों को सटीक जानकारी देना महत्वपूर्ण था, न कि अधिक जानकारी। न्यूज चैनल वालों ने पहले तो कोरोना को लेकर इतनी जानकारी दी कि आम आदमी में उसको लेकर गफलत पैदा हो गई। साथ ही एक कार्यक्रम में जो जानकारी दी जा रही थी, उसी जानकारी को उसी चैनल पर दूसरी कार्यक्रम में गलत बताया जा रहा था। कोरोना को लेकर बरती जाने वाली सावधानियों और स्वास्थ्य को लेकर प्रसारित की जाने वाले जानकारियों में ऐसा देखने में आया। कुल मिलाकर आम आदमी में भ्रम की स्थिति रही। ऐसा ही एक भ्रम कोरोना होने या फैलने के कारणों को लेकर रहा। एक-डेढ़ महीने बाद भी आम आदमी इस बात को लेकर भ्रम में ही था कि किस-किस कारणों से कोरोना फैलता है। मामला स्वास्थ्य से जुड़ा होने के कारण न्यूज चैनलों पर डॉक्टर्स और बायो मेडिकल शोधार्थियों के बीच रोज ही बहस करवाई जाती थी। बहस का कोई परिणाम तो नहीं निकलता था, लेकिन इस दौरान इतने प्वाइंट कोरोना को रोकने के लिए आ जाते थे कि किसी एक हल पर पहुँचना मुश्किल होता था। इस पूरे मामले से यह हुआ कि जो सूचना महत्वपूर्ण थी, वह कहीं न कहीं दब गई और कम महत्व की दूसरी सूचनाएँ चलती रहीं।

इस समय में इलेक्ट्रानिक चैनलों पर मीडिया ट्रायल भी जमकर हुआ। हिंसा और अपराध से जुड़ी कई घटनाएँ आईं, जिसमें चैनल वालों ने ही दोष साबित कर दिया। कोरोना संकट काल में मीडिया ट्रायल ने लोगों की मुश्किल बढ़ी। ऐसी घटनाओं में न्यूज चैनल वाले सामने वाले का पक्ष भी नहीं सुन रहे थे। अपने स्तर पर ही घटना की समीक्षा कर किसी एक पक्ष को दोषी ठहरा दिया जाता रहा। सोशल मीडिया पर चलने वाली पोस्टों की न्यूज चैनलों में समीक्षा करना भी अनावश्यक कार्यक्रम में से था। एक मीडिया मंच के समाचारों की दूसरे मंच पर समीक्षा को किसी भी स्तर पर सही नहीं ठहराया जा सकता था। यहि केवल टाइमपास था। यदि चैनलों की लगातार समीक्षा की जाए तो कंटेंट और मुद्दों की भी कमी कहीं न कहीं नजर आई। सीमित कंटेंट को ही अलग-अलग तरीके से पेश किया गया। साथ ही मैदानी व्यवस्था की समीक्षा करने वालों की बात को ज्यादा महत्व नहीं दिया गया। लाकडाउन के दौरान मीडिया की भी मैदानी रिपोर्टिंग की एक सीमा थी लेकिन न्यूज चैनल वाले मैदान में गए ही नहीं। परिणाम यह हुआ कि कई खबरें तो सोशल मीडिया से उठाकर उन्हीं तथ्यों के साथ प्रसारित कर दी गई। इतना ही नहीं इस दौरान भी सास, बहू और साजिश जैसे मनोरंजन वाले कार्यक्रम भी प्रसारित किए गए, जिनका इस समय में कोई औचित्य नहीं था। इस तरह के कार्यक्रम बताते है कि न्यूज चैनल वालों के पास कोरोना से जुड़ी सामग्री का अभाव था।

लाकडाउन को लेकर भी इलेक्ट्रानिक मीडिया खुद भी मझधार में खड़ा नजर आया और लोगों को भी मझधार में ही खड़ा किया। केंद्र सरकार द्वारा घोषित लाकडाउन के समाचार तो सभी चैनलों ने प्रमुखता से प्रसारित किया, लेकिन उसके फायदे बताने में देरी की। देखा जाए तो लाकडाउन के फायदे लोगों को समझाना आवश्यक था, ताकि सख्ती से लोग इसका पालन करें। परिणाम यह हुआ कि लोग लाकडाउन की आवश्यकता को ही

देरी से समझ पाए, जिसका नुकसान भारत को हुआ। कोरोना संकट काल के दौरान विभिन्न इलेक्ट्रानिक चैनलों ने ऐसी खबरें ज्यादा प्रकाशित की जिससे लोगों के मन में कोरोना को लेकर एक अनावश्यक डर पैदा हुआ। चीन, अमेरिका, इटली के साथ ही विदेशों में कोरोना से हुए हाहाकार को ज्यादा दिखाया गया, जबकि उस समय कोरोना से बचने के लिए लोगों को जागरूक करने, भारत के वर्तमान हालातों के साथ ही भारत सरकार द्वारा उठाए जा रहे ठोस कदमों की ज्यादा से ज्यादा जानकारी देनी थी। ऐसे कई और भी मामले थे, जिससे न्यूज चैनलों की उपयोगिता पर सवाल खड़े हुए।

दरअसल संचार माध्यमों की विश्वसनीयता उसकी सूचनाओं पर निर्भर है। सूचनाएँ जितनी पुख्ता होगी, संचार माध्यमों की विश्वसनीयता उतनी ही मजबूत। आज के समय में जब सूचनाओं की बाढ़-सी आ गई है, सूचनाओं का पुख्ता होना और भी ज्यादा आवश्यक हो गया है। जिस संचार माध्यम की सूचनाएँ सही होगी, वहीं अपनी प्रासंगिकता को सिद्ध कर पाएगा। संकटकाल में जब सूचनाओं का महत्व और भी ज्यादा हो जाता है, यह बात स्वयंसिद्ध हो जाती है। इस संवेदनशील समय में सभी संचार माध्यम सक्रिय रहे और लोगों तक पल-पल की सूचनाएँ दी गईं, लेकिन यह महत्वपूर्ण हो जाता है कि लोगों ने किस माध्यम पर ज्यादा विश्वसनीय माना और उसकी सूचनाओं पर विश्वास किया।

सन 2010 से लेकर 2019 तक का समय इलेक्ट्रानिक मीडिया के लिए नुकसान वाला रहा। इस समय में इलेक्ट्रानिक मीडिया की विश्वसनीयता कम हुई। दशक के अंत में कोरोना संकटकाल में यह विश्वसनीयता और उपयोगिता पहले की तुलना में और भी कम हो गई। इस दौर में भी इलेक्ट्रानिक मीडिया पर समाचार की आवाज कहीं न कहीं शोर और सनसनी के बीच दबी हुई थी। कोरोना संकटकाल में न्यूज चैनलों की टीआरपी तो बढ़ी, लेकिन उपयोगिता का संकट गहराया। सामाजिक जिम्मेदारी को दरकिनार कर न्यूज चैनलों ने अपना बिजनेस मॉडल लागू तो कर लिया, लेकिन लोगों के मन में विश्वास का भाव पैदा नहीं कर पाए। इन चैनलों पर शोर और बहस तो थी, लेकिन इसमें कहीं न कहीं सही सूचनाएँ दबकर रह गईं। इंडिया टीवी के प्रधान सम्पादक श्री रजत शर्मा भी चैनल के प्रमोशन में शोर नहीं, खबरें दिखाने पर जोर देते हैं। वे यह भी कहते हैं, शोर या सनसनी नहीं, केवल खबरों की बात हो। समय खुद की आवाज बनने का नहीं, बल्कि समाज की आवाज बनने का है। श्री शर्मा की ये लाइनें पूरे न्यूज चैनलों की उपयोगिता और दिशा पर सवाल खड़ा करती है।

कोरोना संकटकाल में टीवी देखने वालों का प्रतिशत 250 बढ़ा लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि यह प्रतिशत विश्वसनीयता के साथ न्यूज चैनल देखने वालों का है। लाकडाउन के समय घरों में बंद लोगों ने इसे टाइमपास की तरह ही देखा। यह समय न्यूज चैनलों के पास अपनी विश्वसनीयता साबित करने का मौका था, लेकिन ऐसा हो न सका। आने वाले दिनों में बंद होने की आशंका के बीच प्रिंट मीडिया ने कोरोना संकटकाल में खुद को एक बार विश्वसनीयता और उपयोगिता की कसौटी पर खुद को साबित कर अपनी पकड़ को मजबूत कर लिया है, वही सोशल मीडिया का अपना स्थान है। ऐसे में इलेक्ट्रानिक मीडिया को अपने भविष्य को लेकर एक बार फिर गंभीर चिंतन करना होगा। यह तय करना होगा कि वह खुद को समाज आधारित न्यूज चैनल की तरह स्थापित करना चाहता है या फिर मनोरंजन चैनल की तरह।

संदर्भ

1. सचदेव.वी., (2015) राज्य, समाज और मीडिया, आंचलिक पत्रकार, अगस्त 2015, भोपाल।
2. डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू.हिन्दी.वेबदुनिया.कॉम।
3. डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू.एनडीटीवी.कॉम।
4. डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू.मेपसोफइंडिया.कॉम।

(Email : manish1kale@gmail.com)

कोरोना काल और उसके बाद का मीडिया

■ जयराम शुक्ल

कोरोना के लाकडाउन ने जिंदगी को नया अनुभव दिया है, अच्छा भी बुरा भी। जो जहाँ जिस वृत्ति या कार्यक्षेत्र में है उसे कई सबक मिल रहे और काफी कुछ सीखने को भी। ये जो सबक और सीख है यही उत्तर कोरोना काल की धुरी बनेगी। 'बाइ सेपियन्स-ए ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ हम्यूमन काइंड' के लेखक इतिहासकार युवाल नोआह हरारी भी मानते हैं कि कोविड-19 संक्रमण से लड़ने के लिए दुनिया भर के लोग और सरकारें जो रास्ता चुनेंगे वह आने वाले सालों में हमारी दुनिया को बदल देगा।

कोरोना भविष्य में कालगणना का एक मानक पैमाना बनने वाला है। हमारे पंचांग की कालगणना सृष्टि के आरंभ से प्रारंभ हुई जिसमें सतयुग, त्रेता, द्वापर के बाद कलियुग के युगाब्ध, सहस्त्राब्ध हैं। सभी धर्मों-पंथों ने अपने हिसाब से कलैंडर बनाए। हमारे धर्म में शक और विक्रमी संवत शुरू होता है। क्रिश्चियन्स अपनी कालगणना क्राइस्ट के जन्म से शुरू करते हैं, जिसे हम बी, सी, ए, सी यानी कि ईसा पूर्व, ईसा बाद के वर्षों के साथ गिनते हैं। मुसलमानों का कैलेंडर हिजरी है, यानी कि हजरत मोहम्मद के पहले और बाद के वर्ष। अन्य धर्मों और पंथों के अपने-अपने कैलेंडर होंगे। लेकिन अब एक नया वैश्विक कैलेंडर प्रारंभ होगा, जाति, धर्म, पंथ, संप्रदाय से ऊपर उठकर। कोरोना का पूर्व एवं उत्तर काल। इसे हम ईसाई कैलेंडर के तर्ज पर बिफोर कोरोना यानी बी.सी. और आफ्टर कोरोना यानी ए.सी. कहेंगे। मुझे लगता है कि यह करोना संकट प्रथम एवं द्वितीय विश्व युद्ध से भी गहरा है। नई दुनिया में भेदभाव और अविश्वास और भी गहरा होगा। विचार सिकुड़ेंगे लेकिन राष्ट्रवाद की भावना और प्रबल होगी। अब प्रवासियों के लिए कोई देश पहले की भाँति बाँहें फैलाए खड़ा नहीं मिलेगा। स्व-स्वदेशी और स्वाभिमान की भावना स्वमेव विकसित होगी।

कोरोना ने मानवता को जाति, धर्म, संप्रदाय, नस्ल, रंग, ढंग भूगोल इतिहास के कुँओं से निकालकर समतल में ला खड़ा कर दिया। आज कांगो-सूडान जैसे भुक्कड़ देशों को अमीरजादे अमेरिका-इंग्लैंड की बराबरी में लाकर खड़ा कर दिया है। कोरोना ने वसुधैव को सही अर्थों में एक कुटुम्बकम में बदल दिया। इसके त्रास से 'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे संतु निरामया' के समवेत स्वर उठने लगे हैं। परिस्थितियों को आँकने और देखने का एक नजरिया यह भी है...।

कोरोना ने सोचने, विचारने और महसूस करने के लिए इफरात वक्त दिया है। वक्त थमता नहीं अपने निकलने का रास्ता ढूँढ लेता है। इस कोरोना काल में लिखना, पढ़ना और रचना वैसे ही है जैसे अभावों के बीच तिलक जैसों ने मंडाले जेल लिखा-रचा था। पहली बार लगा कि छुट्टी भी एक सजा होती है। आराम और अवकाश अब चिढ़ाने वाले हैं। मीडिया का रूपरंग... ढंग सब बदल गया। वर्क फ्राम होम का पहला विचार यहीं से शुरू होता है। इन दिनों घर बैठे जूम एप के जरिए

बेवीनार संगोष्ठी में हिस्सा ले रहे हैं। तो कभी कभार चैनल वाला स्काइप के जरिए जोड़कर लाइव कमेंट ले लेता है। बिस्तर में लेटे-बैठे यह सब मन बहलाऊ अंदाज में हो रहा है। इसे आप मीडिया के काम का कोरोनाई अंदाज भी कह सकते हैं।

24×7 वाले मीडिया को हर क्षण की खबर चाहिए। आँधी-तूफान, बाढ़-बूड़ा, महामारी, प्रलय कुछ भी हो पर इनके बीच से ही खबरें निकालनी पड़ेगी। मेरा अनुमान है कि कल्पित प्रलय के समय भी आखिरी व्यक्ति मीडिया वाला ही रहेगा जो उफनाते समंदर की कश्ती पर बैठकर अपने चैनल के लिए लाइव दे रहा होगा। इसके बावजूद विरोधाभास भरी त्रासदी यह कि जो मीडिया चौबीसों घंटे दुनिया भर की खबरे उगल रहा है उस मीडिया में मीडिया और मीडिया वालों की खबरें कहीं नहीं आतीं।

सड़क, मैदान, अस्पतालों और क्वारंटीन होम्स से जो खबरें निकाल कर आप तक पहुँचा रहे हैं क्या वे कोरोना संक्रमण से बचे होंगे ? जी नहीं। कुल कोरोना संक्रमितों में से कुछ हजार लोग मीडिया के भी हैं। लेकिन इन अभागों की खबरें हम तक नहीं पहुँचती। जो अखबार यह दावा करते हैं कि हम खबरें बाँटते हैं कोरोना नहीं, क्या उनसे उम्मीद कर सकते हैं कि वे अपने किसी कर्मचारी के कोरोना संक्रमण की खबरें दें या दिखाएँ? इसलिए उन अभागों को भी उसी श्रेणी में मानकर चलिए जिस श्रेणी में जान हथेली में लिए सड़कों पर मंजिल नापने वाले श्रमिक। सही बात यह कि कई चैनलों और अखबारों के मीडियाकर्मी संक्रमण की जद में हैं... मीडिया समूह के प्रबंधन ने उनसे दूरी बना ली है... साफ साफ कहें तो उन्हें नौकरी से निकाल दिया गया है। महानगरों के बड़े अखबार समूह ने कोरोना को एक अवसर मानकर समय को भुना रहे हैं। प्राय: ऐसे सभी समूहों का मीडिया से समानांतर उद्योग धंधा है... फिलहाल वे उसी के भविष्य को लेकर चिंतित हैं।

मीडिया में नौकरी से वो लोग भी निकाले जा रहे हैं जो संक्रमित नहीं हुए। 22 मार्च के बाद से अब तक पूरे देशभर के मीडिया समूहों ने लगभग 20 से 25 प्रतिशत कर्मचारियों की छँटनी कर दी। ऊँची तनख्वाह वाले पत्रकारों की सैलरी में 30 प्रतिशत तक की कटौती की जा चुकी है। संपादक श्रेणी के ऐसे पत्रकारों की बड़ी संख्या है जिन्हें कहीं दूसरी नौकरी ढूँढने के लिए कह दिया गया है। कुल मिलाकर मीडियाजगत में वैसे ही हाहाकार है जैसे कि सड़क पर मजदूरों का, फर्क इतना है कि मजदूरों की व्यथा सामने आती है और मीडियावालों की व्यथा उनका मीडिया प्रतिष्ठान ही हजम कर जाता है। भूखे सड़क पर वो मजदूर भी हैं और भूखे अपने घरों में ये विपत्ति के मारे मीडियाकर्मी भी।

भोपाल के एक मित्र ने सूचना दी कि यहाँ दो दर्जन से ज्यादा ऐसे पत्रकार हैं जिनकी नौकरी इस कोरोना काल में चली गई। इनमें से कई प्रतिभाशाली पत्रकार हैं वे चाहते तो दूसरी नौकरी भी कर सकते थे लेकिन जुनून के चलते पत्रकारिता को अपना करियर बनाया। इनमें से प्राय: के पास मकान का किराया देने की कुव्वत नहीं बची। कई के घर का चूल्हा एनजीओ या सरकार द्वारा बाँटे गए राशन से जलता है। कुछ दिन बाद चूल्हे का ईंधन भी खतम हो जाएगा। भोपाल, इंदौर जैसे प्रादेशिक महानगरों में दूसरे प्रांत से आकर काम करने वाले मीडयाकर्मियों की बड़ी संख्या है। जो दस साल पहले आए थे उनकी गिरस्ती तो कैसे भी जमी है पर जो इस बीच आए उनका तो भगवान ही मालिक..। संस्थानों ने किनारा-कशी की और सरकार को ये कभी सुहाए नहीं सो उन पर कृपा का प्रश्न ही नहीं उठता।

भोपाल-इंदौर जैसी ही व्यथा देशभर के उन शहरों की है जहाँ मीडिया उद्योग फला-फूला और उनके मालिकों ने उसकी कमाई की बदौलत माल-सेज, उद्योग और कालोनियाँ खड़ी कीं। एक

मीडिया बेवसाइट है... भड़ास फार मीडिया... जो देशभर के पत्रकारों के दुख-दर्द की कथा सुनाती रहती है। इन दिनों पत्रकारों की विपदा से जुड़े एक से एक दुखद किस्से सुनने को मिलते हैं, आप भी उसके लिंक को खोलकर पढ़ें कभी।

प्रिंट माध्यम से जुड़े पत्रकारों की जिंदगी और उनके भविष्य की पूछ परख करने वाला नहीं। हमारे प्रधानमंत्री एक ओर यह घोषणा करते हैं कि निजी क्षेत्र के उद्यम कोरोना काल में न तो किसी की छँटनी करेंगे और न ही वेतन रोकेंगे... लेकिन अखबार समूह घोषित तौर पर डंके की चोट पर नौकरियाँ भी छीन रहा है और वेतन भी काट रहा है। पत्रकारों के श्रमजीवी संगठन कबके मर चुके हैं और प्रेस कौंसिल आफ इंडिया अपने पैदाइश काल से ही नख दंत विहीन है। पत्रकार भी इस धरती का मनुष्य और वोटाधिकारी आदमी है जिसका वोट सरकार बनाने-बिगाड़ने के काम आता है सरकार के रुख और उसकी वरीयता को देखते हुए ऐसा नहीं लगता।

हिंदी की पत्रकारिता तो अपने जन्म से ही दुख-दरिद्रता से भरी रही है। हिंदी के जो स्वतंत्र पत्रकार हैं, स्तंभ और आलेख लिखते हैं वह स्वांत:सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा नहीं... अपितु खुद के जिंदा रहने के सबूत के लिए लिखते हैं... हिंदी पत्रकारिता का विचार पक्ष 'थैंक्यू सर्विस' में चलता है। इस श्रेणी में प्राय: भूतपूर्व संपादक प्रजाति के लोग होते हैं जिनका खाना खर्चा बीवी-बच्चे उठाते हैं, सो इनका तो कैसे भी चल जाता है। चिंता का विषय हिंदी पत्रकारिता की नई पौध को लेकर है... जिसके ख्वाबों-खयालों की दुनिया को इस कोरोना ने पलक झपकते ही बदलकर धर दिया।

उत्तर कोरोना काल की मीडिया का अक्स स्पष्ट होने लगा है। प्रिंट मीडिया का दायरा जिस गति से सिकुड़ रहा है। हालात ठीक होने के बाद भी वह अपने पुराने रूप में आएगा मुश्किल ही लगता है। इन दो महीनों ने पाठकीय आदत बदल दी है। अब बिना अखबार की सुबह असहज नहीं लगती। प्रिंट कापियाँ सिर्फ बड़े अखबारों की ही निकल रही हैं। मध्यम दर्जे के अखबार फाइल कापियों तक सिमट गए। पुल आउट पत्रिकाएँ और विशेषांक शीघ्र ही इतिहास में दर्ज हो जाएँगे। पृष्ठ संख्या आधे से भी कम हो गई। इनका भी पूरा फोकस अब डिजिटल अखबार निकालने पर है। कागज, स्याही और मैनपावर की कमी ने पहले ही लघु अखबारों को डिजिटल में बदल रखा था। जिनका सर्कुलेशन वाट्सएप ग्रुप्स और फेसबुक प्लेटफार्म तक सीमित हो गया। अखबारों के समक्ष विज्ञापन का घोर संकट है। विज्ञापन की शेयरिंग दिनोंदिन घट रही है। डिजिटल मीडिया का दायरा सात समंदरों से भी व्यापक है। विज्ञापन की हिस्सेदारी का लायनशेयर अब इनके पास है। विदेश का डिजिटल मीडिया भी देसी रूप धरके प्रवेश कर चुका है। वह तकनीकी तौर पर ज्यादा दक्ष और पेशेवर है। डिजिटल मीडिया में जाने वाले मेनस्ट्रीम के अखबारों के समक्ष यह बड़ी चुनौती होगी। खबरे शीघ्रगामी तो हुई हैं लेकिन उनकी विश्वसनीयता नहीं रही। आने वाले समय में पाठक का सबसे ज्यादा पराक्रम इसी पर खर्च होगा कि वह जो पढ़ रहा है वह सत्य है कि नहीं। सत्य की परख करने वाले तंत्र का मीडिया में वर्चस्व बढ़ेगा।

कुल मिलाकर जब हम कोरोना संकट से निवृत्त होंगे तब तक जो पत्रकार हैं उनमें पचास फीसद वृत्ति से पत्रकार नहीं रह जाएँगे। मध्यम और लघु अखबार अपने पन्ने डिजिटली छापेंगे और वाट्सएप में पढ़ाएँगे। बड़े समूह के कुछ अखबार बचेंगे लेकिन उनकी वो धाक नहीं रहेगी... जिसकी बदौलत अब तक सत्ता के साथ अपना रसूख दिखाते आए हैं। कोरोना समदर्शी है... वह राजा और रंक में भेद नहीं करता।

(Email : jairamshuklarewa@gmail.com)

प्रशासन की लापरवाही से हुए प्रवासी मजदूर बेहाल

कोरोना से पहले का सफर बेपरवाह और बेखौफ वाला होता था। चाहे किसी से मिलें और किसी भी नुक्कड़ या ढाबे वाले के पास जाकर स्वादिष्ट आहार का सेवन करें। फिर चाहे प्लेटफॉर्म में भीड़ हो या प्लेटफॉर्म खाली हो। आरक्षित सीट हो या न हो, बेलगाम की तरफ जिन्दगी का सफर था और अगर आरक्षित टिकट है तो अपने कोच का इंतजार कर उसमें बैठ जाओ या फिर जनरल टिकट है तो जैसे-तैसे भीड़ का सामना कर बस जनरल कोच में घुस जाओ। न भीड़ का डर न कोई बीमारी का डर। बस इंतजार ऐसे होता था जैसे जिंदगी का सफर इस स्टेशन से शुरू और कुछ घंटों बाद अपनी मंजिल पर खत्म। लेकिन किसे पता था कि जिन्दगी में एक सफर ऐसा भी होगा जिससे लोगों में दूरियों के साथ अपने ही परिवार से मिलने की अनुमति नहीं होगी। सोचो कितने लोग क्वारंटीन होकर अपने परिजनों से चौदह दिन की अवधि के दौरान नहीं मिल सकते। ये किसी चौदह दिन की रिमांड से कम नहीं। कितने लोगों को उन्हीं के घरों में क्वारंटीन करके रखा गया। जी हाँ, हम बात कर रहे हैं ऐसे अदृश्य, तीक्ष्ण वायरस कोरोना की, जिसने लाखों लोगों को मौत की नींद सुला दिया या जिसका न कोई मजहब, न ठिकाना बस एक इंसान को ढूँढ़ता है जिसका इम्यूनिटी कमजोर हो या फिर लंबे समय कोई किसी बीमारी से संक्रमित हो।

इस कोरोना ने किसी गरीब को नहीं देखा हैं न किसी रईस को। एक व्यक्ति के संक्रमित होने से पूरे परिवार, उसके दोस्त और उससे भी ज्यादा वह जिस जिस के संपर्क में आया, एक चैन से लाखों चैन बन कर संक्रमित हो जाता है। सरकार द्वारा दी गई गाइड लाइन और इस वायरस से बचाव के लिए नियम बनाए हैं। लाकडाउन के कारण प्रवासी मजदूर पहले ही दुखी, बेबस और बेरोजगारी की मार खाकर परेशान हैं और प्रधानमंत्री राहत कोष और आत्मनिर्भरता के संदेश के बाद प्रशासन की लापरवाही से प्रवासी मजदूर को आए दिन बिना रेल में यात्रा करने के लिए परेशानी का सामना देखने को मिल रहा हैं फिर चाहे दिल्ली से पटना हो या फिर कांदिवली से प्रतापगढ़ की ओर चलने वाली रेल। प्रवासी मजदूरों का तांता रात से लाइन में खड़े होकर अपनी रेल का इंतजार करता हैं फिर अचानक रेल का रद्द होना। गलत जानकारी से इन्हें रात को 1 बजे फोन करके बुलाया जाता है कि कल दिल्ली से पटना या फिर कांदिवली से प्रतापगढ़। ऐसे कठिन समस्या में और बिना नियमों का पालन करते हुए सड़कों का सफर खत्म कर रेल के इंतजार का सफर शुरू कर दिया। जिससे इन्हें बहुत समस्या देखने को मिली है। बेबस बच्चे, बूढ़े माँ-बाप और परिवार के सभी सदस्यों का हाल बेहाल देखने को मिल रहा है।

प्राप्त जानकारी के अनुसार ये प्रवासी मजदूर घर जाने की होड़ में रात तकरीबन एक बजे से तीस किलोमीटर का सफर तय कर रेलवे स्टेशन पहुँचते हैं और थोड़ी देर में पुलिस प्रशासन रेल रद्द होने की घोषणा करने के बाद इन सभी को वापस घर जाने को कहता है। इन गरीबों के आसरे पर पानी फेर देता है। ऐसे में छोटे छोटे बच्चे, महिलाएँ, बुजुर्ग का हाल भी बेहाल होता नजर आता है। बेरोजगार मजदूर घरों से स्टेशन का रास्ता तय करके निकलता है कि आज रेल पकड़ अपने निवास स्थान पहुँच जाएगा, लेकिन रद्द होने की घोषणा के बाद वापस जाने भर के लिए भी उसके पास रुपये नहीं होते। सबको इंतजार रहता है कि जल्दी से रेल पकड़ अपने निवास स्थान पर पहुँच जाएँ। प्रशासन के अधिकारी इनको फोन करके रेल के चलने की जानकारी देते हैं कि कल फलाँ स्टेशन से फलाँ जगह की रेल निकलेगी। बाद में रेल रद्द होने की घोषणा कर दी जाती है। रेलवे के अफसरों ने कहा कि रेलवे का टाइमटेबल फिक्स है। आज कोई ट्रैन कैंसिल नहीं हुई। पुलिस द्वारा की गई घोषणा से हजारों मजदूर बेहाल हो जाते हैं। पुलिस की लापरवाही से इन प्रवासी के साथ बच्चे, बूढ़ों पर और भी बुरा असर पड़ता है। सरकार को चाहिए कि इन प्रवासी मजदूरों के लिए निश्चित समय पर रेल की व्यवस्थाओं का इंतजाम करके इन्हें सुरक्षित इनके निवास पर पहुँचाया जाए और सही जानकारी उपलब्ध कराए जिससे भविष्य में ऐसी आपातकालीन स्थिति उत्पन्न न हो जिससे वायरस को बढ़ावा दिया जा सके और निश्चित ही कोई उपाय निकाल इनकी समस्याओं का निवारण करें।

■ **दिवाकर**
बी.ए.एम.सी. स्टूडेंट, कर्मवीर विद्यापीठ, खंडवा
(Email : deewaker078@gmail.com)

प्रोफेसर संजय द्विवेदी माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय के प्रभारी कुलपति

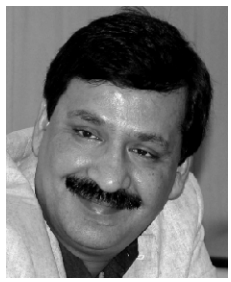

जाने-माने पत्रकार एवं मीडिया शिक्षक प्रोफेसर संजय द्विवेदी को माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय का प्रभारी कुलपति नियुक्त किया गया है। इससे पहले वे विश्वविद्यालय के कुलसचिव की जिम्मेदारी का निर्वहन कर रहे थे। प्रोफेसर द्विवेदी 10 वर्ष से अधिक समय तक विश्वविद्यालय के जनसंचार विभाग के अध्यक्ष भी रहे हैं।

उल्लेखनीय है कि कुलपति प्रोफेसर संजय द्विवेदी लंबे समय तक सक्रिय पत्रकारिता में रहे हैं। उन्हें प्रिंट, बेव और इलेक्ट्रानिक, तीनों ही मीडिया में कार्य करने का वृहद अनुभव है। उन्होंने दैनिक भास्कर, हरिभूमि, नवभारत, स्वदेश, इंफो इंडिया डाट काम और छत्तीसगढ़ के पहले सेटलाइट चैनल जी-24 छत्तीसगढ़ जैसे मीडिया संगठनों में महत्वपूर्ण जिम्मेदारियाँ सँभाली। मुंबई, रायपुर, बिलासपुर और भोपाल में लगभग 14 साल सक्रिय पत्रकारिता में रहने के बाद प्रोफेसर द्विवेदी शिक्षा क्षेत्र से जुड़े। फरवरी-2009 में वे विश्वविद्यालय से जुड़े थे। विश्वविद्यालय में उन्होंने विभागाध्यक्ष एवं कुलसचिव जैसे महत्वपूर्ण पदों कार्य किया। प्रोफेसर द्विवेदी 12 वर्षों से नियमित जनसंचार के सरोकारों को केंद्रित पत्रिका 'मीडिया विमर्श' के कार्यकारी संपादक भी हैं। विभिन्न समाचार पत्र-पत्रिकाओं में नियमित तौर पर राजनीतिक, सामाजिक और मीडिया के मुद्दों पर लेखन करते हैं। उन्होंने अब तक 25 पुस्तकों का लेखन और संपादन भी किया है। वे विभिन्न विश्वविद्यालयों की अकादमिक समितियों एवं मीडिया से संबंधित संगठनों में सदस्य एवं पदाधिकारी भी हैं।

डा. अविनाश वाजपेयी बने कुलसचिव

विश्वविद्यालय में प्रभारी कुलसचिव की जिम्मेदारी डा. अविनाश वाजपेयी को सौंपी गई है। डा. वाजपेयी मीडिया प्रबंधन विभाग के अध्यक्ष भी हैं। इससे पूर्व के विश्वविद्यालय में प्रशासनिक जिम्मेदारियों का निर्वहन कर चुके हैं। ❑

अध्ययन-अध्यापन को रोक नहीं सका लाकडाउन

माखनलाल चतुर्वेदी पत्रकारिता विश्वविद्यालय में संचालित हो रही हैं ऑनलाइन कक्षाएँ

लाकडाउन के बीच माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय के भोपाल सहित सभी परिसरों में ऑनलाइन कक्षाओं का संचालन जारी है। लाकडाउन के कारण जब प्रत्यक्ष कक्षाओं का संचालन बंद हो गया तब विश्वविद्यालय के शिक्षकों एवं विद्यार्थियों ने तकनीक का उपयोग कर अपना अध्ययन-अध्यापन जारी रखा है। कोरोना के कारण उत्पन्न परिस्थितियों में शिक्षकों ने पाठ्यक्रम पूरा कराने और विद्यार्थियों को सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में व्यस्त रखने की चुनौती को स्वीकार किया। इस नवाचार में ऑनलाइन वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग तकनीक और केंद्र सरकार के डिजिटल इंशिएटिव का बखूबी उपयोग किया गया है।

प्रभारी कुलपति प्रोफेसर संजय द्विवेदी ने बताया है कि विश्वविद्यालय के शिक्षक नियमित तौर पर अपनी कक्षाएँ ऑनलाइन माध्यम से ले रहे हैं। कक्षाओं में विद्यार्थियों की उपस्थिति भी उत्साहवर्द्धक है। विश्वविद्यालय के भोपाल सहित नोएडा, रीवा, खण्डवा और दतिया परिसर में ऑनलाइन कक्षाएँ सुचारु रूप से चल रही हैं। शिक्षक विद्यार्थियों को पढ़ाने के साथ ही उन्हें केंद्र सरकार के डिजिटल उपक्रम स्वयंप्रभा, मूक और नेशनल डिजिटल लाइब्रेरी सहित अन्य ओपन सोर्स पर उपलब्ध आवश्यक डिजिटल कंटेंट भी उपलब्ध करा रहे हैं। ऑनलाइन कक्षाओं के माध्यम से विद्यार्थियों को न केवल सैद्धांतिक अध्ययन कराया जा रहा है, बल्कि उनको व्यावहारिक प्रशिक्षण भी दिया जा रहा है। ❑

खबर खबरवालों की

■ संजय द्विवेदी

खतरे में समाचार पत्र उद्योग, राहत की माँग

लाकडाउन और कोरोना संकट में पहले से ही लड़खड़ा रहे समाचार पत्र उद्योग को खतरे में डाल दिया है। इस बीच कई अखबारों के बंद होने, लोगों की नौकरियाँ जाने, वेतन कम किए जाने की खबरों के बीच। समाचार पत्र उद्योग से जुड़े लोग सरकार से राहत की माँग कर रहे हैं। अँगरेजी और तमिल के पाँच प्रमुख प्रकाशकों ने पिछले दिनों तमिलनाडु के मुख्यमंत्री ई के पलानीस्वामी से मुलाकात की। इस दौरान सभी प्रकाशकों ने मुख्यमंत्री से आग्रह किया कि वे प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी से न्यूजपेपर इंडस्ट्री को राहत पहुँचाने के लिए उनकी माँगों का समर्थन करें। प्रकाशकों की ओर से, इंडियन न्यूजपेपर सोसाइटी पीएम से अखबारी कागज पर सीमा शुल्क हटाने, बकाया विज्ञापन बिलों का तुरंत निपटान करने और विज्ञापन दरों में 100 प्रतिशत की वृद्धि करने का आग्रह किया है। 'द हिन्दू पब्लिशिंग ग्रुप' के निदेशक एन. राम, 'द न्यू इंडियन एक्सप्रेस ग्रुप' अध्यक्ष मनोज कुमार सोंथालिया, 'दिनमलार- कोयम्बटूर' के मालिक एल. आदिमूलम, 'डेली थांथी' के निदेशक एस. बालासुब्रमण्यम आदित्यन और 'काल पब्लिकेशंस' (दिनाकरन) के प्रबंध निदेशक आर.एम.आर. रमेश ने एक माँग पत्र सौंपा। इस दौरान, समाचार पत्र के प्रतिनिधि मंडल ने कहा कि समाचार पत्र उद्योग ने विज्ञापन राजस्व न होने की वजह से पिछले दो महीनों के दौरान लगभग 5,000 करोड़ का नुकसान उठाया है। इस बीच एक टीवी साक्षात्कार में हिंदुस्तान टाइम्स की अध्यक्ष शोभना भरतिया का कहना है कि इस दौरान सूचना सामग्री का इस्तेमाल काफी बढ़ा है, लेकिन अखबारों के राजस्व का मुख्य आधार विज्ञापन काफी कम हो गया है। इस दौरान अखबार तमाम चुनौतियों का सामना कर रहे हैं। इस दौरान शोभना भरतिया का कहना था कि भारत में अखबार पूरी तरह से विज्ञापन राजस्व पर निर्भर हैं।

गुजरात से मिली खबर के अनुसार इस मुश्किल घड़ी में संकटों से जूझ रहे प्रिंट मीडिया की बकाया राशि स्वीकृत कर मदद में आगे आने के लिए इंडियन न्यूजपेपर सोसायटी ने गुजरात के मुख्यमंत्री विजय रूपानी की सराहना की और उन्हें धन्यवाद भी दिया। इंडियन न्यूज पेपर सोसायटी के अध्यक्ष शैलेष गुप्ता ने कहा, ''गुजरात सरकार का यह कदम स्वागत योग्य है और प्रिंट मीडिया इंडस्ट्री के लिए बहुत ही ज्यादा राहत प्रदान करने वाला है, क्योंकि इस इंडस्ट्री को मार्च और अप्रैल के दौरान लगभग 4,500 करोड़ रुपये का नुकसान हो चुका है।'' गुप्ता ने गुजरात सरकार की तरह प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी से भी सहायता की उम्मीद की है, क्योंकि पिछले दिनों आईएनएस ने विशेष पैकेज के लिए प्रधानमंत्री से आग्रह किया था। इसके अलावा सभी राज्य सरकारों के साथ-साथ केंद्र सरकार से संबद्ध विभागों और सार्वजनिक उपक्रमों से भी अप्रैल 2020 तक की बकाया राशि भुगतान का आग्रह किया है।

मीडिया के विरुद्ध बढ़ते मानहानि मामलों से अदालत चिंतित

मीडिया के खिलाफ बढ़ते मानहानि के मामलों पर मद्रास उच्च न्यायालय ने गहरी नाराजगी जताई है। उच्च न्यायालय का कहना है कि रिपोर्टिंग में महज कुछ अशुद्धियों पर मीडिया के खिलाफ

अभियोजन को सही नहीं ठहराया जा सकता है। मामले की सुनवाई के दौरान मद्रास उच्च न्यायालय के न्यायाधीश जीआर स्वामीनाथन का कहना था कि कुछ शक्तिशाली राजनेता और उद्योगपति मीडिया को डराने के लिए मानहानि के मामलों का इस्तेमाल 'हथियारों' के रूप में कर रहे हैं। इसके साथ ही अदालत ने एक प्रमुख अँगरेजी अखबार और दो पत्रकारों के खिलाफ शुरू की गई मानहानि की कार्यवाही को रद्द कर दिया है। अदालत का यह भी कहना था कि जब हाई कोर्ट ने रेत के अवैध खनन के आरोपों पर नोटिस जारी किया और यह सवाल सार्वजनिक तौर पर उठाया गया तो मीडिया को इस स्टोरी को छापने का अधिकार है। उल्लेखनीय है कि रेत खनन में अनियमितता बरतने को लेकर हाई कोर्ट में दायर याचिका के आधार पर इस अँगरेजी अखबार में वर्ष 2015 में एक रिपोर्ट छपी थी, जिसे लेकर अखबार के खिलाफ मानहानि का मामला दर्ज किया गया था। इसके बाद यह मामला उच्च न्यायालय में चला गया था।

वहीं देश में पत्रकारों के प्रमुख संगठन 'नेशनल यूनियन ऑफ जर्नलिस्ट्स-इंडिया (एनयूजे-आई)' ने मद्रास हाई कोर्ट की उस टिप्पणी का स्वागत किया है, जिसमें कहा गया है कि रिपोर्टिंग में महज कुछ अशुद्धियों पर मीडिया के खिलाफ अभियोजन को सही नहीं ठहराया जा सकता है। 'एनयूजे-आई' के प्रेजिडेंट रास बिहारी और महासचिव प्रसन्ना मोहंती ने इस बारे में एक संयुक्त बयान जारी कर कहा है कि मद्रास हाई कोर्ट के फैसले का 'एनयूजे-आई स्वागत करता है। इस बयान में यह भी कहा गया है कि यह निर्णय पूरे कारपोरेट और राजनेताओं के लिए एक मील का पत्थर होगा, जो लोकतंत्र के चौथे स्तंभ पर दबाव डालकर प्रेस की स्वतंत्रता को कुचलते हैं और भय का माहौल बनाते हैं।

पुलिस प्रताड़ना पर प्रेस परिषद नाराज

भारतीय प्रेस परिषद ने दिल्ली पुलिस द्वारा एक अँगरेजी अखबार के पत्रकार से पूछताछ किए जाने और कथित तौर पर उन पर आपराधिक मुकदमा चलाने की धमकी देने के मामले में चिंता जताई है। इसके साथ ही प्रेस काउंसिल ने दिल्ली पुलिस आयुक्त से इस मामले में रिपोर्ट पेश करने के लिए भी कहा है। इस बारे में जारी एक बयान में परिषद का कहना है कि 'इंडियन एक्सप्रेस' अखबार के विशेष संवाददाता महेंद्र सिंह मनराल से दिल्ली पुलिस द्वारा नौ मई 2020 को छपी खबर के सिलसिले में पूछताछ करने और आपराधिक अभियोजन की कथित तौर पर धमकी देने को लेकर काउंसिल काफी चिंतित है। अपने बयान में परिषद यह भी कहा है कि चूँकि यह मामला प्रेस के स्वतंत्रतापूर्वक कार्य को प्रभावित करता है, इसलिए मामले के तथ्यों को लेकर दिल्ली के पुलिस आयुक्त से रिपोर्ट माँगी गई है। इससे पहले संपादकों की संस्था 'एडिटर्स गिल्ड ऑफ इंडिया' ने भी इस मामले में दिल्ली पुलिस की इस तरह की कार्रवाई की निंदा की थी।

विनोद बंधु, पटना हिंदुस्तान के संपादक बने

देश के प्रमुख हिंदी अखबार 'हिन्दुस्तान', पटना के संपादक अब विनोद बंधु होंगे। इस बीच बिहार के राज्य संपादक केके उपाध्याय ने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया है। प्रिंट लाइन में विनोद बंधु का नाम जाना प्रारंभ हो गया है। श्री उपाध्याय पहले हिंदुस्तान, उत्तरप्रदेश के प्रमुख रहे। करीब एक साल पहले उन्हें बिहार भेजा गया था। नए संपादक बने विनोद बंधु करीब 35 वर्षों से पत्रकारिता में सक्रिय हैं और एक स्थानीय अखबार से उन्होंने अपने करियर की शुरुआत की। सन 2010 से हिंदुस्तान के साथ जुड़े हैं।

शिक्षा के लिए आएँगे 12 नये चैनल

कोरोना महामारी से उपजे संकटों से शिक्षा क्षेत्र को बचाने लिए सरकार अब ऑनलाइन शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए आगे आ रही है। इसके कारण ही केंद्र सरकार अब ऑनलाइन तथा डिजिटल शिक्षा को बढ़ाने के लिए 'पीएम ई विद्या' की योजना बनाई है और इसके लिए देश के सौ

विश्वविद्यालयों को शामिल किया है। साथ ही हर कक्षा के लिए एक चैनल खोलने का फैसला किया है। वित्तमंत्री निर्मला सीतारमण ने बच्चों की शिक्षा के लिए 'वन क्लास वन चैनल' योजना के तहत 12 नये चैनल शुरू करने की घोषणा की है। वित्त मंत्री ने कहा कि 'स्वयंप्रभा' डीटीएच के माध्यम से बच्चों को पहले से ही शिक्षा दी जा रही है और इसके तहत 12 नये चैनल लाए जाएँगे और पहली कक्षा से लेकर बारहवीं कक्षा के लिए एक-एक चैनल होगा, जिसका फायदा गाँवों तक के बच्चे उठा पाएँगे। इनका प्रसारण टाटा स्काई, एयरटेल के जरिए किया जाएगा। उन्होंने कहा कि जल्द ही प्रधानमंत्री ई-विद्या कार्यक्रम आरंभ किया जाएगा। शिक्षा के लिए नया मंच दीक्षा का ऐलान करते हुए वित्तमंत्री ने कहा कि स्कूलों और कॉलेजों में ऑनलाइन शिक्षा के प्रचार प्रसार के लिए कई नए कदम उठाए गए हैं, जिनमें डीटीएच चैनलों के अलावा रेडियो, सामुदायिक रेडियो और पॉडकास्ट का इस्तेमाल किया जाएगा। स्वयं प्रभा प्लेटफॉर्म, दीक्षा प्लेटफार्म और ई-पाठशाला का इस्तेमाल कर छात्रों को पढ़ने का काम किया जाएगा। उन्होंने बताया कि इसके अलावा स्काइप के सहारे छात्रों के साथ लाइव संवाद भी होंगे। साथ ही वित्तमंत्री ने देश के 100 शीर्ष स्तर के विश्वविद्यालयों को ऑनलाइन पाठयक्रम आरंभ करने की मंजूरी देने की भी घोषणा की।

बंद हुए टाइम्स समूह के दो अखबार

टाइम्स समूह ने अपने दो हिंदी अखबारों सांध्य टाइम्स और इकानामिक टाइम्स हिंदी को बंद करने का फैसला किया है। इन अखबारों में कार्यरत तमाम लोगों को निकाल दिया गया है और कई को घर बैठने के लिए कहा गया है। यह भी चर्चा है कि देर-सबेर नवभारत टाइम्स भी बंद कर दिया जाएगा। हालाँकि छँटनी वहाँ भी जारी है। यह भी बताया जा रहा है कि प्रबंधन 12 पेज वाले नभाटा को प्रिंट वर्जन में केवल चार पेज में सीमित रखना चाहता है और डिजिटल वर्जन में सारे पेज उपलब्ध कराए जाएँगे। हालाँकि नभाटा वाली सूचना पुष्ट नहीं है। वैसे भी दौर अब डिजिटल जर्नलिज्म का है इसलिए अखबारों का डिजिटलाइजेशन ही कल का भविष्य है। इस काम को जो मीडिया हाउस जितना जल्दी करेगा, उसे डिजिटल स्पेस में उतना ही ज्यादा फायदा मिलेगा। इसी रणनीति पर काम करते हुए लाकडाउन को टाइम्स ग्रुप ने अपने लिए वरदान मानते हुए छँटनी, बंदी जैसे कठोर कदम उठाए हैं। नवभारत टाइम्स से कुल तीस लोग हटाए गए हैं। टाइम्स आफ इंडिया समेत पूरे ग्रुप से 92 लोगों की छँटनी की गई है। टाइम्स आफ इंडिया के 15 नान-मेट्रो एडिशंस बंद किए जाने की सूचना है। कई कार्यालय बंद किए गए हैं।

भारतीय प्रेस परिषद पहुँचे राणा

वरिष्ठ पत्रकार आनंद राणा को भारतीय प्रेस परिषद का सदस्य नियुक्त किया गया है। वर्तमान में वे हरिभूमि दिल्ली के संपादकीय प्रभारी के पद पर नियुक्त हैं। केंद्र सरकार ने राणा की नियुक्ति को गजट ऑफ इंडिया में अधिसूचित कर दिया है। सूचना और प्रसारण मंत्रालय द्वारा जारी अधिसूचना में कहा गया है कि प्रेस परिषद अधिनियम 1978 की धारा 5 की उपधारा (3) और (5) के साथ पठित धारा 6 की उपधारा (6) के अनुरूप आनंद राणा को प्रेस परिषद में सदस्य नामित किया जाता है। राजधानी दिल्ली स्थित सूचना भवन में अध्यक्ष तथा उच्चतम न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश चंद्रमौली कुमार प्रसाद की अध्यक्षता में गत 24 फरवरी को राणा की नियुक्ति संबंधी प्रक्रिया को पूर्ण किया गया था।

पदस्थापनाएँ

- सहारा न्यूज नेटवर्क ने वरिष्ठ पत्रकार रमेश अवस्थी पर एक बार फिर भरोसा जताया है। समूह ने उन्हें अब एमपी-छत्तीसगढ़ का कार्यभार सँभालने की अतिरिक्त जिम्मेदारी सौंपी है। यानी अब उन पर सहारा समय एमपी-छत्तीसगढ़ के चैनल की भी जिम्मेदारी होगी। वैसे अभी वे उत्तरप्रदेश-उत्तराखंड के चैनल प्रमुख की जिम्मेदारी सँभाल रहे हैं और अब से वे उत्तरप्रदेश, उत्तराखंड, मध्यप्रदेश

और छत्तीसगढ़ का भी कार्यभार सँभालेंगे।

- एफएम रेडियो चैनल 'रेडियो मिर्ची' की संचालक कंपनी 'एंटरटेनमेंट नेटवर्क इंडिया लिमिटेड' में नंदन श्रीनाथ को कार्यकारी अध्यक्ष नियुक्त किया गया है। श्रीनाथ इससे पहले बेनेट कोलमैन एंड कंपनी लिमिटेड में निदेशक (रिस्पांस) की जिम्मेदारी सँभाल रहे थे।
- आदित्य बिड़ला ग्रुप की कंपनी 'एप्लॉज एंटरटेनमेंट' से जुड़े अशोक चेरियन के बारे में खबर है कि वह विडियो शेयरिंग ऐप 'टिकटॉक' इंडिया के मार्केटिंग विभाग के प्रमुख बनने जा रहे हैं। चेरियन अप्रैल 2018 से 'आदित्य बिड़ला कंपनी' में मार्केटिंग और राजस्व प्रमुख की जिम्मेदारी निभा रहे थे।
- 'रिपब्लिक मीडिया' नेटवर्क में पूजा मदन की नियुक्ति हुई है। मार्केट के विस्तार के लिए उन्हें यहाँ उत्तर पूर्व का सेल्स निदेशक नियुक्त किया गया है। पूजा मदन को मीडिया उद्योग में विपणन का 15 से भी अधिक वर्षों का अनुभव है।
- वरिष्ठ पत्रकार मिहिर रंजन ने हिंदी न्यूज चैनल 'रिपब्लिक भारत' में आउटपुट संपादक के पद से त्यागपत्र दे दिया है। उन्होंने अपनी नई पारी की शुरुआत 'एबीपी न्यूज' के साथ की है। यहाँ पर उन्हें कार्यकारी उपाध्यक्ष की जिम्मेदारी सौंपी गई है।

स्मृति शेष

शशिभूषण द्विवेदी

कथाकार एवं वरिष्ठ पत्रकार शशिभूषण द्विवेदी का पिछले दिनों आकस्मिक निधन हो गया। हृदय गति रुक जाने के कारण उनका निधन हुआ। वे 45 वर्ष के थे और 'हिन्दुस्तान टाइम्स' समूह की पत्रिका 'कादम्बिनी' में वरिष्ठ उप संपादक थे। द्विवेदी के परिवार में केवल पत्नी हैं। दो साल पहले ही उनका कथा संग्रह 'कहीं कुछ नहीं' राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित हुआ था। 26 जुलाई 1975 को उत्तरप्रदेश के सुल्तानपुर में जन्मे शशिभूषण द्विवेदी की कहानी की कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। लेखन में उनके योगदान के लिए उन्हें 'ज्ञानपीठ नवलेखन पुरस्कार', 'सहारा समय कथा चयन पुरस्कार' और 'कथाक्रम कहानी पुरस्कार' से नवाजा जा चुका है।

पंकज कुलश्रेष्ठ

दैनिक जागरण, आगरा के वरिष्ठ पत्रकार पंकज कुलश्रेष्ठ का निधन हो गया है। कोरोनावायरस (कोविड-19) पॉजिटिव होने के बाद उन्हें आगरा के एसएन मेडिकल कॉलेज के आइसोलेशन वार्ड में भर्ती कराया गया था, जहाँ उन्होंने आखिरी साँस ली। करीब 52 साल के पंकज कुलश्रेष्ठ दैनिक जागरण, मथुरा के जिला प्रभारी रह चुके थे और इन दिनों दैनिक जागरण, आगरा में डिप्टी न्यूज एडिटर के पद पर कार्यरत थे।

पद्मेश्वर चित्रकार

असम के वरिष्ठ पत्रकार पद्मेश्वर चित्रकार का निधन हो गया। 62 वर्षीय पद्मेश्वर लंबे समय से गंभीर बीमारी से जूझ रहे थे। असम में शिवसागर जिले के सिमलुगुरी में जन्मे पद्मेश्वर चित्रकार ने मीडिया में अपने करियर की शुरुआत वर्ष 1980 में साप्ताहिक अखबार 'अमर प्रगति' से की थी। वर्ष 1984 में वे हिंदी साप्ताहिक 'जागृत' से जुड़े। वर्ष 1991 में उन्होंने अपना 'साप्ताहिक कृषक बंधु' अखबार शुरू किया था और बतौर संपादक इसकी जिम्मेदारी सँभाली। असम के तमाम दैनिक अखबारों में अपनी सेवाएँ देने के बाद वे 'दैनंदिन बार्ता' में मुख्य संवाददाता भी रहे।

नीलिमा

वरिष्ठ पत्रकार नीलिमा का लंबी बीमारी के बाद दिल्ली में निधन हो गया। वह लंबे समय से ब्रेन ट्यूमर से पीड़ित थीं। नीलिमा अभी समाचार एजेंसी यूनीवार्ता में विशेष संवाददाता थीं। उनके पास पत्रकारिता का दो दशक से अधिक का अनुभव था। वह कुछ समय यूनीवार्ता के जम्मू ब्यूरो की प्रमुख रहीं। उनके परिवार में पति और दो पुत्री हैं। उनके पति प्रमोद कुमार भी पत्रकार हैं।

(Email : 123dwivedi@gmail.com)

वीरांगना दुर्गा भाभी

यह दुर्गा भाभी हैं। वही दुर्गा भाभी जो साण्डर्स वध के बाद राजगुरु और भगत सिंह को लाहौर से अँगरेजों की नाक के नीचे से निकालकर कोलकाता ले गई थीं।

महान क्रन्तिकारी भगवती चरण वोहरा की पत्नी थीं। जब भगवती चरण जी का बम फटने से देहांत हो गया, तब दुर्गा भाभी ने अँगरेजों को सबक सिखाने के लिए पंजाब प्रांत के पूर्व गवर्नर लॉर्ड हैली पर हमला करने की योजना बनाई। दुर्गा भाभी ने उन पर 9 अक्टूबर 1930 को बम फेंक भी दिया। हैली और उसके कई सहयोगी घायल हो गए, लेकिन वो घायल होकर भी बच गया। उसके बाद दुर्गा भाभी बचकर निकल गईं। लेकिन जब मुंबई से पकड़ी गईं तो उन्हें तीन साल के लिए जेल भेज दिया गया।

बताया ये भी जाता है कि चंद्रशेखर आजाद के पास आखिरी वक्त में जो माउजर था, वह भी दुर्गा भाभी ने ही उनको दिया था।

जब वह जेल से रिहा हुईं, तो उनको अँगरेजों ने परेशान करना शुरू कर दिया। परेशान होकर वो गाजियाबाद निकल गईं और फिर वहाँ से लखनऊ चली गईं। वहाँ उन्होंने मांटेसरी स्कूल खोला और आजीवन उसमें पढ़ाती रहीं। गुमनाम हो गईं। क्योंकि जिस आजादी की कल्पना उन्होंने और बाकी क्रान्तिकारियों ने की थी वो भारत तो बिल्कुल कहीं भी दिखाई नहीं दिया इसलिए वो गुमनाम हो गईं।

जब 1956 में पं. नेहरू ने उनको मदद का प्रस्ताव दिया तो उन्होंने इन्कार कर दिया। 14 अक्टूबर 1999 को वह इस दुनिया से गुमनाम ही विदा हो गईं। कुछ अखबारों ने उनके बारे में छापा, बस।

आज आजादी के 72 साल के बाद भी न तो उस वीरांगना को इतिहास के पन्नों में जगह मिली और न ही वह किसी को याद रहीं। चाहे वो सरकार हो या जनता। एक स्मारक का नाम तक उनके नाम पर नहीं है। कहीं कोई मूर्ति नहीं है उनकी।

सरकार तो भूली ही जनता भी भूल गई। ऐसी वीरांगना को हम शत शत नमन करते हैं।

जन्म : 19-06-1871 • निधन : 23-4-1926

॥ कर्मयोगी पं. माधवराव सप्रे ॥

.... विद्वज्जनों की विहंगम दृष्टि में ....

"सम्पत्तिशास्त्र-विषयक पुस्तकों की जरूरत को पूरा करने - इस अभाव को दूर करने - की, जहाँ तक हम जानते हैं, सबसे पहले पण्डित माधवराव सप्रे, बी.ए., ने चेष्टा की। हिन्दी में अर्थशास्त्र-सम्बन्धी एक पुस्तक लिखे आपको बहुत दिन हुए। परन्तु पुस्तक आपके मन की न होने के कारण उसे प्रकाशित करना आपने उचित नहीं समझा। आपकी राय है कि अर्थशास्त्र-सम्बन्धी पुस्तक ऐसी होनी चाहिए जिसमें इस देश की साम्पत्तिक अवस्था का विचार विशेष प्रकार से किया गया हो। यहाँ की स्थिति के अनुसार सम्पत्तिशास्त्र के सिद्धान्तों का प्रयोग करके उनके फलाफल का विचार जिस पुस्तक में न किया जायगा वह, आपकी सम्मति में, यथेष्ठ उपयोगी न होगी। आपका कहना बहुत ठीक है। आपको जब हमने लिखा कि सम्पत्ति-शास्त्र पर हम एक पुस्तक लिखने का इरादा रखते हैं तब आपने प्रसन्नता प्रकट की और अपनी हस्तलिखित पुस्तक हमें भेज दी। उससे हमने बहुत लाभ उठाया है। एतदर्थ हम आपके बहुत कृतज्ञ हैं।"

- महावीर प्रसाद द्विवेदी

('सम्पत्तिशास्त्र' पुस्तक की भूमिका, 15 दिसम्बर 1907)

"आज के हिन्दी भाषा के युग को पण्डित महावीरप्रसाद जी द्विवेदी द्वारा निर्मित तथा तेज को पण्डित माधवराव जी सप्रे द्वारा निर्मित कहना चाहिए। यह सेवाएँ सब सज्जनों की हैं किंतु संपादकीय व्यवस्था, विचार, प्रवाह और भाषा शैली के रूप में वर्तमान युग को द्विवेदी जी और सप्रे जी का ही युग कहना होगा।"

- माखनलाल चतुर्वेदी

(भरतपुर संपादक सम्मेलन - 1927 के अध्यक्षीय अभिभाषण का अंश)

"सप्रे जी उन थोड़े-से इने गिने मनुष्यों में हैं, जिन्होंने अपना सुख त्याग कर देश हित के लिये अपना जीवन समर्पण किया है। उन गिने हुए देशसेवकों में हैं, जिन्होंने, मातृभाषा दूसरी होते हुए भी, हिन्दी को राष्ट्रभाषा के नाते अपनाया है। ..... उनका गीता रहस्य तो बहुतों ने देखा है। वह कितनी ऊँची वस्तु है, प्रायः सब ही पढ़े-लिखे लोग जानते हैं। किन्तु जो उनके जीवन-रहस्य से परिचित हैं वे इतना और अधिक जानते हैं कि सप्रेजी का व्यक्तित्व कितने उच्च आदर्श का है। सप्रे जी का सम्बन्ध राष्ट्रीयता से प्राचीन है। वह 'केसरी' होकर भारत में गरज चुके हैं। उनकी वाणी से कितने ही शत्रुओं के हृदय दहल चुके हैं। सप्रे जी जैसी महान आत्माओं द्वारा उसी प्रकार 'हिन्दी केसरी' फिर गरजेगा और राष्ट्र को आगे बढ़ावेगा।"

- पुरुषोत्तम दास टण्डन

(पंचदश हिन्दी साहित्य सम्मेलन देहरादून (1924) में उद्‌गार)

माधवराव सप्रे स्मृति समाचारपत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक विजयदत्त श्रीधर द्वारा दृष्टि आफसेट, भोपाल से मुद्रित तथा माधवराव सप्रे स्मृति समाचारपत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल (म.प्र.) 462 003 से प्रकाशित। संपादक : विजयदत्त श्रीधर